।। ॐ श्रीपरमात्मने नमः ।।

ईस्वर अंस जीव अबिनासी

परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज
के प्रवचनों का सार संग्रह

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

ईस्वर अंस जीव अबिनासी

[परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजके प्रवचनोंका सार-संग्रह]

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

'हे प्रभो! आप ही मेरी माता हो, आप ही पिता हो, आप ही बन्धु हो, आप ही सखा हो, आप ही विद्या हो, आप ही धन हो। हे देवदेव! मेरे सब कुछ आप ही हो।'

संकलन तथा सम्पादन—

राजेन्द्र कुमार धवन

गीता प्रकाशन, गोरखपुर

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

नम्र निवेदन

वर्तमान युगके अद्वितीय महापुरुष परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजका इस भारतभूमिमें आगमन ही मानवमात्रके कल्याणके भावसे हुआ था। यह विश्वहितकारी भाव उनके प्रवचनोंमें अनेक बार प्रकट हुआ है; जैसे—

मेरा एक ही विषय है कि जीवका कल्याण कैसे हो। इसीसे सम्बन्धित बात ही मैं कहता हूँ। (८.१.१९९९, प्रातः ९, सूरत)

आप अपना कल्याण कर लो तो बड़े आनन्दकी बात है, बड़ी खुशीकी बात है! मेरेसे बिना पूछे, आप अपना कल्याण कर लो तो हम दूर बैठे राजी हो जायँगे! हमारे मनमें प्रसन्नता हो जायगी! (१७.१.२००१, प्रातः ९, नागपुर)

आप तत्त्वज्ञ हो जायँ, आप जीवन्मुक्त हो जायँ, आप भगवद्भक्त हो जायँ, आप भगवत्प्रेमी हो जायँ, यह है मेरा विषय। (२६.४.२००१, सायं ४, ऋषिकेश)

आप परमात्माकी प्राप्तिमें लग जाओ तो हम राजी हो जायँगे, खुश हो जायँगे! हमारे मनकी बात हो जायगी! पाप आप करते हो, दुःख मेरेको होता है! (२५.११.२००१, सायं ३, ऋषिकेश)

जबतक परमश्रद्धेय श्रीस्वामीजी महाराज इस धरातलपर रहे, जबतक वे अपने प्रवचनों तथा पुस्तकोंके माध्यमसे कल्याणकी नयी-नयी युक्तियोंको प्रकाशित करते रहे, जिनसे इस घोर कलियुगमें भी मानवमात्र सुगमतापूर्वक अपना कल्याण कर सके। इसी कारण उनकी पुस्तकोंमें एक विलक्षण शक्ति है, जो पढ़नेवालेके हृदयमें प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्षरूपसे प्रभाव डालती है!

प्रस्तुत पुस्तक '**ईस्वर अंस जीव अबिनासी**' में परमश्रद्धेय श्रीस्वामीजी महाराज द्वारा नवम्बर २००१ से लेकर जून २००२ तक दिये गये प्रवचनोंका सार-संग्रह दिया जा रहा है। ये सभी प्रवचन गीताभवन, स्वर्गाश्रम, ऋषिकेशमें दिये गये थे। शाश्वत सुख चाहनेवाले आबालवृद्ध प्रत्येक स्त्री-पुरुषको इनसे अधिक-से-अधिक लाभ उठाना चाहिये।

किसी भी देश, जाति, धर्म, सम्प्रदाय आदिका कोई भी जिज्ञासु यदि प्रस्तुत पुस्तकका मनोयोगपूर्वक अध्ययन करेगा तो उसके जीवनमें अवश्य उत्थान होगा, इसमें सन्देह नहीं। प्रत्येक साधकसे मेरी विनम्र प्रार्थना है कि कम-से-कम एक बार तो इस पुस्तकको अवश्य ही पढ़े।

श्रीकृष्णजन्माष्टमी — **निवेदक—**

वि० सं० २०७४ (सन् २०१७) — **राजेन्द्र कुमार धवन**

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

ईस्वर अंस जीव अबिनासी

मंगलाचरण

पराकृतनमद्बन्धं परं ब्रह्म नराकृति।
सौन्दर्यसारसर्वस्वं वन्दे नन्दात्मजं महः॥

'जिन्होंने नमस्कार करनेवालोंके भव-बन्धनको दूर कर दिया है और जो मनुष्यके आकारमें साक्षात् परब्रह्म हैं, उन सौन्दर्यके सारसर्वस्व नन्दनन्दनरूप दिव्य तेजकी मैं वन्दना करता हूँ।'

प्रपन्नपारिजाताय तोत्त्रवेत्रैकपाणये।
ज्ञानमुद्राय कृष्णाय गीतामृतदुहे नमः॥

'जो शरणागत भक्तोंको कल्पवृक्षके समान मनोवांछित फल देनेवाले हैं, जिनके एक हाथमें घोड़ोंकी लगाम और चाबुक है तथा दूसरा हाथ ज्ञानमुद्रासे सुशोभित है, ऐसे गीतारूपी अमृतको दुहनेवाले भगवान् श्रीकृष्णको मैं प्रणाम करता हूँ।'

वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम्।
देवकी परमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्॥

'जो वसुदेवजीके पुत्र, दिव्यरूपधारी, कंस एवं चाणूरका नाश करनेवाले और देवकीजीके लिये परम आनन्दस्वरूप हैं, उन जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्णकी मैं वन्दना करता हूँ।'

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्
पीताम्बरादरुणबिम्बफलाधरोष्ठात्।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्
कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने॥

'वंशीसे सुशोभित हाथोंवाले, नवीन मेघके समान कान्तिवाले, पीताम्बरधारी, बिम्बफलके समान लाल होंठोंवाले, पूर्णचन्द्रके समान सुन्दर मुखवाले तथा कमलके समान नेत्रोंवाले श्रीकृष्णसे बढ़कर मैं कोई और तत्त्व नहीं जानता।'

हरिः ॐ नमोऽस्तु परमात्मने नमः।
श्रीगोविन्दाय नमो नमः।
श्रीगुरुचरणकमलेभ्यो नमः।
महात्मभ्यो नमः।
सर्वेभ्यो नमो नमः।

* * * * * * * * *

'सच्चिदानन्दघन परमात्माको और सन्त-महापुरुषोंको सादर अभिवादन कर आपलोगोंके समक्ष कुछ बातें कहनेके लिये एक चेष्टा कर रहा हूँ। हमारी बातोंमें अच्छी बातें मालूम दें, वे शास्त्रोंके सिद्धान्तकी, वेदोंकी, पुराणोंकी, स्मृतियोंकी, रामायण आदि ग्रन्थोंकी हैं; और त्रुटियाँ मालूम दें, वे मेरी व्यक्तिगत हैं। व्यक्तिगत बातोंकी तरफ ध्यान न देते हुए वास्तविक सिद्धान्तकी तरफ ध्यान देंगे, ऐसी प्रार्थना है।'

* * * * * * * * *

श्रोता—पहले हमसे गलतियाँ हुईं, पर अब हम सत्संगमें, भगवान्‌में लग गये। परन्तु जो हमारे

पुराने परिचित हैं, वे हमारी पुरानी गलतियोंको देखकर ताने मारते हैं, पुरानी गलतियोंकी याद दिलाते हैं! इससे हमें बड़ा दु:ख होता है! हम क्या करें?

स्वामीजी—दु:ख मत करो। उनको कहने दो। इससे आपके पाप कम होते हैं। आप निश्चय पक्का रखो कि अब हम गलती नहीं करेंगे। कोई आदमी यह नहीं कह सकता कि पहले हमसे गलतियाँ नहीं हुई हैं। गलतियाँ सबसे हुई हैं। अच्छे-अच्छे सन्त-महात्मा भी पहले अज्ञानावस्थामें गलती कर चुके हैं। इस जन्ममें नहीं तो पहले जन्ममें ही सही, भूतकाल सबका सदोष रहा है। पहले दोष रहा है, तभी बन्धनमें आये, नहीं तो बन्धनमें क्यों आते? अत: अब वे आपकी गलती कहें तो आपको राजी होना चाहिये कि आप ठीक कहते हो, हम ऐसे ही थे, पर भगवान्‌की कृपासे अब ठीक हो गये!

मनमें धैर्य रखो और दु:खी मत होओ। जो गलती हमारेमें नहीं है, उससे हम दु:खी क्यों हों? हमने तो थोड़ी गलती की हो, पर उन्होंने ज्यादा मान ली तो कोई हर्ज नहीं। अपनेमें कोई गलती होगी तो उसका दण्ड होगा। अपनेमें गलती नहीं है, पर दूसरे गलती मानें तो उसका दण्ड नहीं होगा। भगवान् सब जानते हैं। इसलिये निश्चिन्त रहो, निर्भय रहो और निश्चय करो कि अब हम गलती नहीं करेंगे। अपने निश्चयपर विश्वास रखो।

श्रोता—आपने 'सत्यकी खोज' शीर्षक लेखमें लिखा है कि कामना मन-बुद्धिमें नहीं होती, कर्तामें होती है। यह कर्ता कौन है?

स्वामीजी—स्वयं ही कर्ता-भोक्ता बनता है। सभी दोष अहम्‌में होते हैं, स्वयंमें नहीं होते। वास्तवमें स्वयं परमात्माका अंश है। परमात्माका अंश होनेसे स्वयं एकदम शुद्ध, निर्मल है। परन्तु उसने अपरा प्रकृतिके अहम्‌को अपना मान लिया। अत: दोष अहम्‌को पकड़नेसे हुए हैं। दोष होनेपर भी स्वरूपसे सभी सर्वथा निर्दोष हैं।

अहम् (मैं-पन)-के साथ अभिमान और अभिमानके साथ दर्प भी आ जाता है। विद्या, बुद्धि आदि अहंतावाली चीजोंको लेकर अपनेमें बड़प्पनका अनुभव होना 'अभिमान' है और धन-सम्पत्ति आदि ममतावाली चीजोंको लेकर अपनेमें बड़प्पनका अनुभव होना 'दर्प' (घमण्ड) है।

संसारको सच्चा मानते हैं और उससे सुखकी इच्छा करते हैं, इसीसे सब पाप पैदा होते हैं। संयोगजन्य सुखकी इच्छा पाप कराती है। परमात्माके अंशमें पाप होते ही नहीं। वह सत्ता ('है')-रूप है। परमात्मा भी सत्तारूप हैं और उनका अंश भी सत्तारूप है। सत्तामें पाप कैसे होगा? सत्तामें न पाप है, न पुण्य। वह अहम्‌को स्वीकार करता है और सुख चाहता है—इन दो कारणोंसे पाप होता है। वह अहम्‌को अपना स्वरूप मानता है और सुखके लिये पाप करता है। जहाँ उसने अपनेको और अहम्‌को एक माना है, वहाँ पाप होते हैं। केवल अहम्‌में भी पाप नहीं होते और केवल स्वयंमें भी पाप नहीं होते। ये मिलते हैं, तब पाप होते हैं।

खास बन्धन है—संयोगजन्य सुखकी इच्छा। भोग भोगते हैं तो उसमें विषय और इन्द्रियका संयोग होता है अर्थात् विषय और इन्द्रिय एक होते हैं। इन्द्रियके साथ अहम् रहता है कि मैं सुखी हूँ, मैं दु:खी हूँ, आदि। गीतामें आया है—

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति॥

(गीता २। ७१)

‘जो मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओंका त्याग करके स्पृहारहित, ममतारहित और अहंतारहित होकर आचरण करता है, वह शान्तिको प्राप्त होता है।’

कामना, स्पृहा, ममता और अहंकार—इन चारोंको छोड़ते ही पाप छूट जाते हैं। इस स्थितिका नाम ‘ब्राह्मी स्थिति’ है—‘**एषा ब्राह्मी स्थितिः**’ (गीता २। ७२)।

ज्ञानमार्गमें पहले अहंता दूर होती है, पीछे ममता दूर होती है। योगमार्ग और भक्तिमार्गमें पहले ममता दूर होती है, पीछे अहंता दूर होती है। खास बात इतनी है कि अहंता और ममता छोड़नी है। इनको छोड़नेसे ही ब्राह्मी स्थिति होती है।

श्रोता—आपके लेखमें यह बात आयी है कि शरीरके बिना भी हम रह सकते हैं और रहते हैं, तो यह रहना किस प्रकार होता है?

स्वामीजी—जब कोई मर जाता है तो बिना शरीर ही जाता है। शरीर तो यहीं पड़ा रहता है। शरीर न रहनेपर सत्ता नहीं मिट जाती। सत्ता शरीरके अधीन नहीं है, प्रत्युत सत्ताके अधीन शरीर है। सत्ताके बिना शरीर टिकता नहीं। सत्ता निकल जाय तो शरीर सड़ जाता है, गल जाता है, उसमें कीड़े पड़ जाते हैं। सत्ताके बिना शरीर नहीं रह सकता, पर शरीरके बिना सत्ता रह सकती है।

सत्ताका कुछ नहीं बिगड़ता। मरनेपर स्थूलशरीर नहीं रहता, पर सूक्ष्म और कारणशरीर रहते हैं। परन्तु मुक्त होनेपर सूक्ष्म और कारणशरीर भी नहीं रहते।

श्रोता—हम कैसे समझें कि हम अहंकाररहित हो गये?

स्वामीजी—विकार होते हैं तो अहंकार है, विकार नहीं होते तो अहंकार नहीं है। आपको कोई गाली दे तो कैसी लगती है? कोई आदर करे तो कैसा लगता है? इनका असर पड़ता है तो अहंकार है। अहंकार नहीं हो तो कोई आदर करे या निरादर करे, स्तुति करे या प्रशंसा करे, असर नहीं पड़ेगा। महान् शान्ति रहेगी, महान् आनन्द रहेगा! हरदम मस्ती रहेगी! सब दुःख मिट जायँगे!

लोग समझते हैं कि रुपये ज्यादा होनेसे दुःख मिट जायँगे, पर जो लखपति-करोड़पति हैं, वे भी दुःखी हैं। एक दरिद्र आदमी है और एक धनी आदमी है, पर दुःख दोनोंमें बराबर है। दरिद्रको चार-पाँच रुपयोंकी कमी है, धनीको लाखों रुपयोंकी कमी है! धनीको लाखों रुपयोंका घाटा लगता है, पर दरिद्रको लाख रुपयेका घाटा कभी लगता ही नहीं! दरिद्रको तो एक-दो वस्तुओंकी कमी है, पर धनीको बहुत तरहकी कमियाँ हैं कि गाड़ी ठीक नहीं है, ड्राइवर नहीं है, गाड़ी खराब हो गयी, आदि-आदि। धनी आदमी बेटीको ज्यादा दे तो बेटा नाराज हो जाय, और बेटीको कम दे तो बेटी नाराज हो जाय! कोई मोटर माँगने आये और उसको मोटर नहीं दे तो उसका मन खराब हो जाय, और मोटर दे तो मोटर खराब हो जाय! धनी आदमीसे कई नाराज हो जाते हैं, पर दरिद्रके पास कुछ है नहीं, उससे कौन नाराज हो! धनी आदमीको आफत ज्यादा है, कम नहीं है!

***   ***   ***

मनुष्य भोजनसे नहीं बँधता, प्रत्युत स्वाद-दृष्टिसे बँधता है। इसलिये भोजनमें स्वाद-दृष्टि, चटोरपन नहीं होना चाहिये। यह पशुओंमें भी होता है। पशुओंको बढ़िया चारा खानेको मिल जाय तो वह साधारण चारा नहीं चरेगा और भूखों मरेगा! कुत्तोंको देखा है, उनको दूध पीनेकी आदत पड़ जाय तो वे रोटी नहीं खाते और भूखों मरते हैं, दुःख पाते हैं! ऐसे पशु भी मैंने देखे हैं, जिनको बढ़िया चारा मिले तो वह भी खा लेते हैं और साधारण चारा मिले तो वह भी खा लेते हैं। ऐसे पशु पुष्ट होते हैं। कई बैल, बछड़ा-बछड़ी होते हैं, वे ऊपरसे आता हुआ पानी पीते हैं, पर नीचेसे पानी नहीं पीते

और प्यासे मरते हैं! यह आदत मनुष्यशरीरमें बनती है, जो हरेक योनिमें साथ चलती है। इसलिये स्वाद-दृष्टि छोड़कर जो मिल जाय, उससे पेट भर लेना चाहिये। **भोजन वह करना चाहिये, जो आयुर्वेद और धर्मशास्त्रसे विरुद्ध न हो।**

जिनको गद्देपर सोनेकी आदत पड़ जाती है, उनको गद्दा न मिले तो नींद नहीं आती! मुफ्तमें अपनी आदत खराब कर लेते हैं और दु:ख पाते हैं! गद्देपर सोना कोई दोष नहीं है, पर स्वभाव नहीं बिगड़ना चाहिये। चटाई मिल जाय तो उसपर भी नींद आ जाय। अपना स्वभाव मत बिगाड़ो। स्वभाव बिगड़नेसे मनुष्य दु:ख पाता है।

हम वटवृक्षके नीचे सत्संग करते थे। भोजनके समय एक आदमी हलवा लाया। साधु अमृतरामजी भोजन परोसते थे। उन्होंने पूछा कि हलवा आज एक ही दिन लाया है या रोजाना लायेगा? रोजाना नहीं लायेगा तो हलवा वापिस ले जा! हमारा स्वभाव बिगड़ जायगा! रोजाना लाये तब तो ठीक है। एक दिन हलवा खायें तो आदत बिगड़ जायगी! साधुओंकी आदत मत बिगाड़ो!

***   ***   ***

श्रोता—कामनाएँ स्पष्ट दु:खदायी प्रतीत होती हैं, पर हम उनको छोड़नेमें अपनेको असमर्थ पाते हैं!

स्वामीजी—भगवान्‌को 'हे मेरे नाथ! हे मेरे नाथ!' पुकारो। भगवान्‌की कृपासे छूटेंगी। भगवान्‌को अपना समझो। संसार अपना नहीं है। इसको अपना मानना ही गलती है। संसारको अपना माननेसे ही देरी लगती है।

श्रोता—भगवान्‌को पुकारते हैं, पर अहंकारके कारण असली पुकार नहीं होती!

स्वामीजी—कोई बात नहीं, आप पुकारते रहो। नीयत ठीक है तो नकलीसे असली हो जायगी। भगवान्‌की कृपासे सब काम ठीक होता है। यह शरीर भी भगवान्‌की कृपासे ही मिला है—

कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥

(मानस, उत्तर० ४४। ३)

'बिना ही कारण स्नेह करनेवाले ईश्वर कभी विरले ही दया करके इसे मनुष्यका शरीर देते हैं।'

जिस कृपासे शरीर मिला है, उसी कृपासे काम होगा! कृपाका भरोसा रखो। **'तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाण:'** (श्रीमद्भा० १०। १४। ८)—उनकी कृपाको देखते हुए पुकारो। भगवान्‌की कृपासे सब काम ठीक हो जायगा। कठिन-से-कठिन काम भी भगवान्‌की कृपासे सुगम हो जाता है! असम्भव भी सम्भव हो जाता है!

हमारेपर भगवान्‌की बड़ी कृपा है! हमलोगोंको जो बातें मिल रही हैं, ये हरेकको नहीं मिलतीं। यह भगवान्‌की कृपा है! हमने कोई उद्योग थोड़े ही किया है? हमारी कोई पात्रता थोड़े ही है? फिर भी भगवान्‌की बातें मिलती हैं तो भगवान्‌की कृपा है! **आजकल सत्संगमें जो बातें कहते हैं, ऐसी गीतामें भी नहीं लिखी हैं!**

***   ***   ***

श्रोता—आप कहते हैं कि भगवान्‌का धाम हमारा असली घर है, वह क्या मरनेके बाद मिलेगा?

स्वामीजी—नहीं, जीते-जी भी मिल सकता है। भगवान् तो सब जगह हैं।

श्रोता—यह तो मुसाफिरी है, फिर वह घर कहाँपर है?

स्वामीजी—संसार तो 'नहीं' है, पर भगवान् 'है'। 'है' में कोई विकार नहीं है। **हरदम 'है' में स्थित रहें तो जीते हुए ही भगवान्‌के धाममें स्थित हैं!** सब मुसाफिरी मिट जायगी! आनन्द हो जायगा!

श्रोता—'चुप साधन' करते समय सत्तामात्र 'मैं' का हल्का-सा अनुभव होता है और आनन्दस्वरूपकी भी प्रतीति होती है, फिर उसमेंसे बाहर निकलना अच्छा नहीं लगता। परन्तु कीर्तन, नामजप आदिकी क्रिया करनेमें अन्दरसे एक प्रतीकार आता है, तो क्या करें?

स्वामीजी—चुप रहें। अगर चुप रहना, कुछ भी न करना आ गया, इसका ठीक अनुभव हो गया है तो चुप रहें, कुछ नहीं करें। कुछ नहीं करनेससे स्वरूपमें स्थिति स्वतः-स्वाभाविक होती है। अगर संसारमें स्थिति नहीं होगी तो स्वरूपमें ही स्थिति होगी।

श्रोता—इससे भक्ति गौण नहीं हो जायगी?

स्वामीजी—गौण नहीं होगी। भक्ति चुप होनेका फल है। अगर नींद और आलस्य न आयें तो चुप रहना (कुछ भी न करना) बहुत बढ़िया है। अगर नींद और आलस्य आयें तो कीर्तन करना चाहिये।

श्रोता—तत्त्वज्ञानका अनुभव हुए बिना भी क्या प्रेम और शरणागतिकी प्राप्ति हो सकती है?

स्वामीजी—हो सकती है। भक्ति आरम्भसे भी की जाती है। भागवतमें आया है—**'भक्त्या सञ्जातया भक्त्या'** (श्रीमद्भा० ११। ३। ३१)। एक साधन-भक्ति होती है, एक साध्य-भक्ति होती है। श्रवण, कीर्तन आदि साधन-भक्ति है। साधन-भक्तिसे प्रेमलक्षणा साध्य-भक्ति प्राप्त होती है।

श्रोता—भगवान् कभी तो अपने दीखते हैं और कभी अपने नहीं दीखते!

स्वामीजी—जैसे संसारमें शीत, घाम आदि मौसम बदलते रहते हैं, ऐसे ही अपनी सात्त्विक, राजस और तामस वृत्तियाँ बदलती रहती हैं। इनकी परवाह न करके भगवान्‌में लगे रहो। पहले राजसी-तामसी वृत्तियाँ कम होंगी और सात्त्विकी वृत्ति बढ़ेगी, फिर गुणातीत हो जाओगे। आप लगे रहो—***'हरिसे लागे रहो भाई। तेरे बिगड़ी बात बन जाई, रामजीसे लागे रहो भाई'***।

श्रोता— हम तो सात्त्विक विचार रखना चाहते हैं, सात्त्विक भोजन, रहन-सहन अपनाना चाहते हैं। परन्तु हमारे परिवारके लोग हमारी हँसी उड़ायें, उसमें बाधा डालें तो हमें क्या करना चाहिये?

स्वामीजी—बाधा डालनेवाले वास्तवमें आपके सहायक हैं! संसारमें ऐसे ही मोह बढ़ रहा है, फिर जो बाधा डालनेवाले हैं, उनमें तो मोह कम होगा। मोह कम होगा तो आपका उद्धार होगा। आपके लाभकी बात है! एक आप साधन करते हैं, वह लाभ है और एक लोग आपकी हँसी उड़ाते हैं, वह लाभ है! वे आदर-सत्कार नहीं करते तो भी आपका उनमें मोह है, अगर वे आदर-सत्कार करेंगे तो उनमें मोह ज्यादा होगा, ज्यादा फँसोगे! वे हँसी-दिल्लगी उड़ायें तो शान्तिसे सह लो। आपको क्रोध नहीं आना चाहिये। क्रोध आनेसे आपका पतन होगा। आपको लाभ होगा, हानि नहीं होगी। हानि आप करो तो होगी।

वास्तवमें हमारा पतन हम ही कर सकते हैं, दूसरा नहीं कर सकता।

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥

(गीता ६। ५)

'अपने द्वारा अपना उद्धार करे, अपना पतन न करे; क्योंकि आप ही अपना मित्र है और आप

ही अपना शत्रु है।'

मनुष्य अपना नुकसान खुद करता है, दूसरा नहीं कर सकता। आप अपना एक लक्ष्य बना लो कि हमें परमात्माकी प्राप्ति करनी है तो आपकी उन्नति होगी ही—यह नियम है। संसारमें तो नफा और नुकसान दोनों होते हैं, पर परमात्मप्राप्तिके मार्गमें नफा-ही-नफा होता है, नुकसान होता ही नहीं। परमात्मप्राप्तिके मार्गपर चलनेवाले व्यक्तिके द्वारा संसारमात्रको लाभ होता है। सन्तोंके द्वारा दूसरोंको लाभ-ही-लाभ होता है, नुकसान होता ही नहीं।

भाई हो या बहन हो, साधु हो या गृहस्थ हो, जिसका उद्देश्य परमात्मप्राप्ति है, उसके द्वारा दुनियाको स्वतः-स्वाभाविक लाभ होगा। कारण कि उसके द्वारा स्वार्थ और आरामका त्याग होगा। स्वार्थ और आरामका त्याग होगा, तभी साधन बनेगा, नहीं तो साधन कैसे बनेगा? भोगोंका त्याग किये बिना साधन कैसे बनेगा? त्याग करनेवालेके दर्शनसे दूसरोंको लाभ होगा! उसकी क्रियाओंसे, उसके वचनोंसे लाभ होगा! उसके शरीरका स्पर्श करनेवाली हवासे लाभ होगा!

*** *** ***

जीवका स्वरूप क्या है—इसको समझनेकी बड़ी आवश्यकता है। एक सत्ता होती है, जिसको होनापन कहते हैं, वह सत्ता आपका स्वरूप है। जीवका स्वरूप है—चिन्मय सत्ता, चेतन सत्ता। अपने स्वरूपको न जाननेके कारण ही जड़-चेतनके विवेककी बातें ठीक-ठीक समझमें नहीं आतीं। ऐसी कई बातें हैं जो ठीक तरहसे कही नहीं जातीं, सुनी नहीं जातीं, समझमें नहीं आतीं। हमारा स्वरूप चिन्मय सत्ता है—इस बातको मैं बहुत दामी समझता हूँ। सन्त-महात्मा ऐसी बात प्रायः खोलते नहीं हैं। मेरा तो खोलनेका स्वभाव है! हरेक वक्ताका ऐसा स्वभाव नहीं होता। पहले मेरे मनमें ऐसी थी कि कठिन-से-कठिन बात भी मैं दूसरेको समझा सकता हूँ, पर वह बात अब नहीं रही! परन्तु विवेचन ठीक तरहसे कर सकता हूँ—यह बात अब भी मनमें आती है!

आप सत्-स्वरूप हैं। सत्का कभी अभाव नहीं होता। आपका स्वरूप निराकार है। जो चोला (शरीर) आपने धारण किया है, वह आपका स्वरूप नहीं है।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

(गीता २। २२)

'मनुष्य जैसे पुराने कपड़ोंको छोड़कर दूसरे नये कपड़े धारण कर लेता है, ऐसे ही देही पुराने शरीरोंको छोड़कर दूसरे नये शरीरोंमें चला जाता है।'

आपने कपड़ा धारण कर रखा है। यह आपका स्वरूप नहीं है। आप चेतन सत्ता हो, शरीर तो जड़ है।

*** *** ***

शास्त्रमें आया है—

गोभिर्विप्रैश्च वेदैश्च सतीभिः सत्यवादिभिः।
अलुब्धैर्दानशीलैश्च सप्तभिर्धार्यते मही॥

(स्कन्दपुराण, माहे० कुमार० २। ७१)

'गायें, ब्राह्मण, वेद, सती स्त्री, सत्यवादी, लोभरहित और दानशील सन्त-महापुरुष—इन सातोंके द्वारा यह पृथ्वी धारण की जाती है अर्थात् इनपर पृथ्वी टिकी हुई है।'

इस श्लोकमें सबसे पहले गायका नाम आया है। **पृथ्वीमें भूकम्प, महामारियाँ आदि आती हैं, यह गायके तिरस्कारका फल है।** गायोंका नाश कर रहे हैं, इससे देशका बड़ा नुकसान होगा। गाय माता है, पृथ्वी माता है, गंगा माता है। माता सबका पालन करनेवाली होती है। जिसका गोबर-गोमूत्र भी पवित्र है, ऐसी गायकी जितनी महिमा कही जाय, उतनी थोड़ी है! गाय सबसे पवित्र है और पवित्र करनेवाली है। आज गायोंकी बुरी तरहसे हत्या की जा रही है। इस कारण देशपर आफत आ रही है। लोग धर्मपर ध्यान नहीं दे रहे हैं।

विशेष परिचित न होते हुए भी मैंने अभी अनेक देशोंकी बातें सुनीं तो मालूम हुआ कि धर्मके तत्त्वको केवल हिन्दू जानते हैं! मैंने तो यह विचार कर लिया कि सबको तत्त्वज्ञान हो जाय, सब ज्ञानी महात्मा बन जायँ, सब जीवन्मुक्त हो जायँ, भगवत्प्रेमी बन जायँ! यह चीज केवल हिन्दुओंमें देखी है, और किसीमें नहीं देखी। इसका मैंने अध्ययन किया है। **आध्यात्मिक तत्त्वकी बात जितनी हिन्दुओंमें देखी है, उतनी किसीमें नहीं देखी।** अभी अमेरिकामें [वर्ल्ड ट्रेड सेण्टरमें] बहुत भयंकर दुर्घटना हुई, हजारों आदमी मर गये, पर ऐसी घटना होनेपर भी लोग भगवान्‌में लगनेकी अपेक्षा ज्यादा भोग भोगनेमें लग गये कि पता नहीं कब मर जायँ! भगवान्‌में लग जायँ—यह बात उनमें है ही नहीं! आफतमें भी भगवान्‌की तरफ वृत्ति नहीं जाती। परन्तु हिन्दुओंपर आफत आती है तो वे भगवान्‌को पुकारते हैं। ऐसे हिन्दूधर्ममें गायका मुख्य स्थान है।

गायोंकी महिमा अपार, असीम है! इन गायोंकी हत्यासे दुनियाका बहुत नुकसान है! परन्तु हम क्या करें! राजकीय आदमी भी मानते नहीं! इसका नतीजा बहुत खराब होगा, और हो रहा है! बहुत-से हिन्दू ईसाई और मुसलमान बन रहे हैं, और वे मुसलमान बने हुए हिन्दू ही हिन्दुओंका नाश कर रहे हैं! इतना ही नहीं, हिन्दू खुद भी गर्भपात, नसबन्दी आदिके द्वारा अपना नाश कर रहे हैं, जिससे बहुत बड़ा भारी नुकसान हो रहा है! हमारेको बहुत दुःख होता है, पर करें क्या!

गायोंकी रक्षा करो तो आपकी रक्षा होगी, नहीं तो रक्षा होनी बड़ी मुश्किल है! आज गायोंपर बड़ी आफत आ रही है! आप अपने-अपने घरोंमें गायोंको रखो, उनका पालन करो। **विदेशी गायें वास्तवमें गायें नहीं हैं।** मेरे मनमें तो विचार हो गया कि गायोंका वंश कैसे रहेगा! मनमें दुःख हुआ कि उनका बीज ही नष्ट हो जायगा! फिर गीताजीकी बात याद आयी—'**बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्**' (गीता ७। १०) 'हे पृथानन्दन! सम्पूर्ण प्राणियोंका अनादि बीज मुझे जान।' इससे सन्तोष हो गया। लाला लाजपतराय कहते थे कि स्वराज्य मिलते ही हमारा पहला काम गौहत्या बन्द करना होगा। उनका व्याख्यान मैंने सुना है। पर आज क्या दशा हो रही है! लोग घरोंमें कुत्तोंको रखते हैं, पर गायोंको नहीं रखते! कुत्तोंको घरमें रखनेवाले नरकोंमें जाते हैं।

महाभारतमें आया है कि जब पाँचों पाण्डव और द्रौपदी वीरसंन्यास लेकर उत्तरकी ओर चले तो चलते-चलते भीमसेन आदि सभी गिर गये। अन्तमें जब युधिष्ठिर भी लड़खड़ा गये, तब देवराज इन्द्र रथ लेकर वहाँ आये और युधिष्ठिरसे बोले कि आप इसी शरीरसे स्वर्ग पधारो। युधिष्ठिरने देखा कि एक कुत्ता उनके पास खड़ा है। उन्होंने इन्द्रसे कहा कि यह कुत्ता मेरी शरणमें आया है; अतः यह भी मेरे साथ स्वर्गमें चलेगा। इन्द्रने युधिष्ठिरसे कहा—

स्वर्गे लोके श्ववतां नास्ति धिष्ण्य-

मिष्टापूर्तं क्रोधवशा हरन्ति।
ततो विचार्य क्रियतां धर्मराज
त्यज श्वानं नात्र नृशंसमस्ति॥

(महाभारत, महाप्र० ३।१०)

‘धर्मराज! कुत्ता रखनेवालोंके लिये स्वर्गलोकमें स्थान नहीं है। उनके यज्ञ करने और कुआँ, बावड़ी आदि बनवानेका जो पुण्य होता है, उसे क्रोधवश नामक राक्षस हर लेते हैं। इसलिये सोच-विचारकर काम करो और इस कुत्तेको छोड़ दो। ऐसा करनेमें कोई निर्दयता नहीं है।’

युधिष्ठिरने कहा कि मैंने इसका पालन नहीं किया है, यह तो अपनी मरजीसे मेरे साथ, मेरी शरणमें आ गया है; अत: मैं इसका त्याग नहीं कर सकता। कारण कि यहाँ सब जगह बर्फ-ही-बर्फ है, यह कहाँ रहेगा? क्या खायेगा? इसको खानेके लिये भोजन भी नहीं मिलेगा। अत: मैं इसको अपना आधा पुण्य देता हूँ, इसीसे यह मेरे साथ चलेगा। युधिष्ठिरके ऐसा कहनेपर उस कुत्तेमेंसे धर्मराज प्रकट हो गये और प्रसन्न होकर बोले कि मैंने तुम्हारी परीक्षा ली थी, तुम परीक्षामें सफल हो गये, अब स्वर्ग चलो।

गायोंके विषयमें जितनी बात कहें, थोड़ी हैं! गाय केवल हिन्दुओंकी माँ है, मुसलमानोंकी नहीं—ऐसा नहीं है। गाय विश्वकी माँ है—‘**गावो विश्वस्य मातर:**’। वह जैसे हिन्दुओंको दूध देती है, वैसे ही मुसलमानोंको भी देती है। इसलिये सभीको गायोंकी रक्षा करनी चाहिये। हिन्दुओंपर गायोंकी रक्षा करनेकी विशेष जिम्मेवारी है। गंगेश्वरानन्दजी महाराजको वेद कण्ठस्थ थे। उनसे मैंने सुना है कि जो गायका नाश करे, उस आदमीका नाश कर देना चाहिये—ऐसा वेदोंमें आता है।

*** *** ***

श्रोता—भगवत्प्राप्ति सरलतासे कैसे हो?

स्वामीजी—केवल दो बात स्वीकार कर लें कि हम भगवान्‌के हैं, शरीर-संसारके नहीं हैं। यह बहुत सरल, सुगम बात है! हम संसारके साथ रह सकते ही नहीं—यह सबका अनुभव है। हम भगवान्‌के हैं—यह तो मानना ही पड़ता है, इसका अनुभव सबको नहीं है। परन्तु हम संसारके नहीं हैं—यह तो सबका अनुभव है। शरीर आदि पहले नहीं थे और आगे नहीं रहेंगे—यह बिल्कुल अनुभवकी बात है। जब शरीर भी हमारे साथ नहीं रहेगा तो फिर रुपये-पैसे, जमीन-जायदाद, कुटुम्ब आदि हमारे साथ कैसे रहेंगे? केवल इस अनुभवका आदर करना है, बस हो गया काम! भगवान् हमारे हैं—यह मानना है और संसार हमारा नहीं है—यह जानना है। इतनी सरल बात कोई नहीं है!

श्रोता—यह जो ऋणानुबन्ध है कि किसीसे लिया है, किसीको दिया है, इसके कारण संसारमें आना-जाना होता रहता है और सम्बन्ध जुड़ता रहता है!

स्वामीजी—यह सब मिट जायगा, बिल्कुल मिट जायगा! वास्तवमें यह सब मन-बुद्धिमें है, आपमें नहीं है। आपतक यह पहुँचता ही नहीं। आपतक न ऋणानुबन्ध पहुँचता है, न पाप पहुँचता है।

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्यय:।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते॥

(गीता १३। ३१)

‘हे कुन्तीनन्दन! यह (पुरुष स्वयं) अनादि होनेसे और गुणोंसे रहित होनेसे अविनाशी परमात्म-स्वरूप ही है। यह शरीरमें रहता हुआ भी न करता है और न लिप्त होता है।’

यस्य नाहङ्कृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते॥

(गीता १८। १७)

'जिसका अहंकृतभाव अर्थात् 'मैं कर्ता हूँ'—ऐसा भाव नहीं है और जिसकी बुद्धि लिप्त नहीं होती, वह युद्धमें इन सम्पूर्ण प्राणियोंको मारकर भी न मारता है और न बँधता है।'

अहंकृतभाव आपके स्वरूपमें है ही नहीं! आपतक यह पहुँचता है क्या?

श्रोता—चेतनतक तो नहीं पहुँचता है, पर व्यक्तितक तो पहुँचता ही है!

स्वामीजी—मुख्य तो स्वरूप ही है, व्यक्ति नहीं। वास्तवमें व्यक्ति है ही नहीं, अगर होती तो मिटती नहीं। व्यक्ति आपके स्वरूपतक नहीं पहुँचती। स्वरूप रहेगा, व्यक्ति नहीं रहेगी। वास्तवमें आप निर्लेप हैं। उस निर्लेपके साथ आप रहो। गलती यह होती है कि आप उनके साथ रहते हो, जिनसे लेप होता है।

श्रोता—पर वहाँ पहुँचें कैसे?

स्वामीजी—वहाँ आप पहुँचे हुए हो! मैं झूठ नहीं बोलता हूँ, धोखा नहीं देता हूँ! जैसी बात है, वैसी कहता हूँ। **जहाँतक कोई वस्तु नहीं पहुँचती, वही आप हैं!** आपने केवल जड़ मन-बुद्धिके साथमें अपनी एकता मान ली, जो असम्भव है। अमावस्याकी रातसे सूर्यका विवाह कैसे हो सकता है? आपने मन-बुद्धिको अपना मान लिया, इतनी ही बात है। मन-बुद्धि अपने नहीं हैं, प्रत्युत प्रकृतिका कार्य हैं। प्रकृतिके साथ आप मिलते ही नहीं, मिल सकते ही नहीं! शरीर तो हरदम ही मिट रहा है, पर आप जैसे हो, वैसे-के-वैसे रहते हो। आप बालक, जवान या बूढ़े नहीं होते। अतः **आप अपनेमें स्थित रहो, इतनी ही बात है! इसके सिवाय कुछ करना नहीं है**। समझमें न आये तो भी मान लो कि मैं 'स्वस्थ' हूँ, 'स्व' में स्थित हूँ—'**समदुःखसुखः स्वस्थः**' (गीता १४। २४)। विचार करो, 'स्व' में स्थित होते ही आपके साथ क्या रहेगा?

श्रोता—जब 'स्व' में स्थित होंगे, तब यह बात होगी!

स्वामीजी—'स्व' में स्थित होनेके लिये आपको कौन मना करता है? मैं तो कहता हूँ कि आपको समझमें नहीं आये तो भी मान लो।

श्रोता—प्रकृतिमें स्थित होनेकी आदत पड़ी हुई है!

स्वामीजी—वह आदत मिट जायगी। आदत तो सुधारनी पड़ती है। आदत सुधारनेके सिवाय और क्या काम करना है? आदत नहीं सुधारे तो साधक कैसे हुए? जो अपना स्वभाव शुद्ध नहीं बनाता, वह मनुष्य कैसा? मनुष्य और साधक पर्याय हैं। मनुष्यमात्र साधक है। साधक वह होता है, जो स्वभाव सुधारता है।

आप केवल विचार कर लो कि मैं शरीरके साथ नहीं हूँ। मेरे साथ न स्थूलशरीर है, न सूक्ष्मशरीर है, न कारणशरीर है। स्थूलशरीरमें क्रिया और पदार्थ हैं। सूक्ष्मशरीरमें चिन्तन होता है। कारणशरीरमें स्थिरता और समाधि होती है। परन्तु आपमें कुछ नहीं होता है। समाधिकी बड़ी महिमा है; परन्तु स्वरूपके बोधमें समाधि और स्थिरता भी कामकी नहीं है। स्वरूप स्वतः-स्वाभाविक निर्लेप है। आप केवल स्वरूपमें स्थित हो जाओ। स्वरूपमें न पाप पहुँचता है, न पुण्य पहुँचता है; न दैवी सम्पत्ति पहुँचती है, न आसुरी सम्पत्ति पहुँचती है। केवल आपकी इच्छा जोरदार होनी चाहिये, और कोई जरूरत नहीं है। आप स्वरूपमें स्थित हो जाओ, और कुछ नहीं करना है। स्वभाव भी अपने-आप सुधर जायगा।

स्वभाव सुधारना दो नंबर है।

मनुष्य स्वरूपको जाननेकी चेष्टा तो करता है, पर उसमें स्थित नहीं होता। स्वरूपके विषयमें आजतक आपने जितना जाना है, उतना जानना काफी है। आप केवल स्वीकार कर लो कि मैं 'स्वस्थ' हूँ, अपने स्वरूपमें स्थित हूँ। आप मान लो, फिर यह अपने-आप हो जायगा। इतना सुगम मार्ग कोई है ही नहीं! कुछ नहीं करना है, केवल 'चुप' हो जाओ।

*** *** ***

श्रोता—आप कभी-कभी कह देते हैं कि संसार है ही नहीं! यह कैसे माना जाय; क्योंकि संसार तो हमारे व्यवहारमें आता है?

स्वामीजी—हम ऐसा आग्रह कभी करते ही नहीं! आप भले ही संसारको मानो, पर यह हमारा नहीं है। **वास्तवमें संसार बाधक नहीं है, संसारका सम्बन्ध बाधक है।** संसार हमारा नहीं है। संसारपर आपका वश चलता है क्या? शरीरको बीमार मत होने दो, कमजोर मत होने दो, मरने मत दो! यह आपके हाथमें है क्या? हाथमें नहीं है तो फिर यह हमारा कैसे हुआ? जो चीज मिलती है और अलग हो जाती है, वह हमारी नहीं होती।

कौन कर्ता है, कौन कर्ता नहीं है—इन बातोंको छोड़कर भगवान्‌के शरण हो जाओ। कर्ता-भोक्ताकी चर्चा ही छोड़ दो! जो होता है, भगवान्‌की लीला होती है! कर्ता-भोक्ताकी झंझट छोड़कर यह मान लो कि हम भगवान्‌के हैं, भगवान् हमारे हैं।

श्रोता—आत्मा तो चेतन है, फिर यह शरीरमें क्यों फँसता है?

स्वामीजी—सुखके लिये फँसता है। एक ही बड़ी बाधा है, और वह है सुखकी इच्छा। मूर्ख-से-मूर्ख हो या विद्वान्-से-विद्वान् हो, सुखकी इच्छा सबमें हरदम रहती है। इच्छा करनेसे सुख मिलेगा नहीं, केवल बन्धन होगा। एक सुखकी इच्छा छोड़ दो तो निहाल हो जाओगे!

*** *** ***

श्रोता—कर्मयोग और ज्ञानयोगमें तो जड़-चेतनका विभाग (विवेक) आवश्यक है, किन्तु भक्तियोगमें भी क्या जड़-चेतनका विभाग आवश्यक है?

स्वामीजी—भक्तियोगमें जड़की उपेक्षा है। जड़से अपना कोई मतलब नहीं है। हमें जड़का चिन्तन नहीं करना है, पर कोई पूछे कि यह क्या है तो कहे कि लीला है। अपना उससे कोई मतलब नहीं। हमें दीखे तो लीला है, कोई दूसरा पूछे तो लीला है। ज्ञानमार्गमें जैसे विवेककी आवश्यकता है, वैसे भक्तिमार्गमें नहीं है। ज्ञानमार्गमें त्याज्य वस्तु होती है, इसलिये ज्ञानमार्गमें त्याज्य वस्तुकी सत्ता दूरतक रहती है। परन्तु भक्तिमें कोई त्याज्य वस्तु है ही नहीं। भक्त जड़का त्याग नहीं करता, प्रत्युत लीला देखकर मस्त होता है!

विवेककी आवश्यकता सबमें है, पर भक्तिमें विवेक मुख्य नहीं है। विवेकमें दो चीज होती है—जड़ और चेतन। इनमें जड़ चीज त्याज्य होती है। जड़का त्याग करनेसे बहुत दूरतक जड़की सत्ता रहती है। वह सत्ता बाधक होती है। परन्तु लीला समझनेसे वह सत्ता बाधक नहीं होती।

श्रोता—एक साधक आरम्भसे ही भक्तिमार्गमें चलता है और दूसरा साधक पहले विवेकमार्गमें चलकर फिर भक्तियोगमें चलता है तो दोनोंमेंसे कौन-सा साधक तेज होगा?

स्वामीजी—जिसकी लगन अच्छी होगी, वह तेज हो जायगा। इसमें मार्ग कारण नहीं है। जिस साधककी लगन तेज होगी, जिसको भगवान्‌के भजनमें, भगवान्‌के चिन्तनमें ज्यादा रस आयेगा, वह

तेज हो जायगा। इसमें साधन कारण नहीं है, लगन कारण है। जिसमें लगन तेज होगी, वह तेज हो ही जायगा।

श्रोता—सत्संग सुनते-सुनते मन इधर-उधर जाने लगता है और इधर-उधरकी बातें दिमागमें आने लगती हैं! इसका कोई उपाय बतायें कि जिससे सत्संग सुनते समय मन यहीं लगा रहे।

स्वामीजी—यह आपके ही हाथमें है, दूसरेके हाथमें नहीं है। इसका उपाय यह है कि **आप सत्संग इस तरह सुनें कि उसे दूसरोंको भी सुना सकें। पढ़ना भी हो तो इस तरह पढ़ें कि दूसरोंको भी पढ़ा सकें।**

श्रोता—सन्तोंसे प्रेम करना और उनके वियोगमें दु:खी हो जाना भी क्या दोषी है?

स्वामीजी—इसमें प्रेम और मोह दोनों हो सकते हैं। जो मोह-अंश है, वह दोषी है। मोह शरीरमें होता है। मोह-अंश नहीं हो तो कोई दोष नहीं है।

श्रोता—सन्तोंके वियोगमें आँसू बहाना क्या दोषी है?

स्वामीजी—दोषी नहीं है। इससे लाभ होता है। कारण कि सन्तोंमें जो प्रेम है, वह भगवान्‌को लेकर है।

श्रोता—साधकको कैसे मालूम पड़े कि मोहके आँसू हैं या प्रेमके?

स्वामीजी—प्रेमके आँसू ठण्डे होंगे और नेत्रोंके भीतरी (नासिकाकी तरफ) कोनेसे निकलेंगे। परन्तु मोहके आँसू गरम होंगे और नेत्रोंके बाहरी कोनेसे निकलेंगे।

*** *** ***

श्रोता—हमारे पूर्वजोंको मरे हुए बरसों बीत गये और उनकी सद्‌गतिके लिये बहुत कुछ कर दिया, फिर भी उनके लिये श्राद्ध करते रहते हैं, तो क्या अभीतक उनका कल्याण नहीं हुआ?

स्वामीजी—कल्याण हो गया हो तो भी श्राद्ध करना अच्छा है। उनका कल्याण हुआ या नहीं हुआ, इसका हमें पता नहीं है, पर हमें तो उनके लिये श्राद्ध करते रहना चाहिये। लोकसंग्रहके लिये भी करते रहना चाहिये, जिससे इसकी परम्परा चलती रहे। यद्यपि गयाश्राद्ध आदि करानेसे फिर श्राद्ध करना नहीं पड़ता, फिर भी श्राद्ध करते रहना चाहिये। मैं तो यही सम्मति देता हूँ कि शुभ काम करते रहो। अगर उनका कल्याण हो गया हो तो वह श्राद्ध (पुण्य) हमारे खातेमें जमा हो जायगा।

*** *** ***

अपना कल्याण करना बहुत सुगम है! केवल भाव बदलना है कि यह संसार नहीं है, भगवान् है। यह साधारण नदी नहीं है, गंगाजी है—यह भाव ही तो बदला है! सिद्धान्तमें एक परमात्माके सिवाय कुछ है नहीं, कुछ हुआ नहीं, कुछ होगा नहीं, कुछ होना सम्भव ही नहीं। सब कुछ एक परमात्मा ही है—इतनी ही तो बात है! इतनी बातसे बेड़ा पार है!

श्रोता—यह गंगाजी है—यह बात तो कहनेसे मान लेते हैं, समझ भी जाते हैं और भूलते भी नहीं हैं, पर यह सब परमात्मा है—ऐसा माननेमें बार-बार भूल हो जाती है! इसका क्या कारण है?

स्वामीजी—कारण यह है कि आपने संसारको दृढ़तासे पकड़ा हुआ है। खास कारण है—सुखकी आसक्ति। यह आसक्ति संसारमें परमात्मबुद्धि नहीं होने देती। सुखकी आसक्ति छोड़नेसे बहुत जल्दी काम हो जाता है। **संयोगजन्य सुखकी आसक्तिका त्याग किये बिना 'यह सब परमात्मा है'—यह बात भीतर बैठती नहीं।** सुखासक्ति ही बाधक है।

श्रोता—ब्रह्मसूत्रमें आया है—‘**इतरस्याप्येवमसंश्लेषः पाते तु**’ (४। १। १४); अतः (जीवन्मुक्त होनेपर भी) जबतक प्रारब्ध है, तबतक भगवद्भावकी जगह भोगभाव आता ही रहेगा!

स्वामीजी—हम इस बातको नहीं मानते। वास्तवमें यह बात है नहीं। अगर ठीक तरहसे विचार करें तो यह बात ठहरती नहीं! कारण कि प्रारब्धके बिना कोई मनुष्य है ही नहीं, तो फिर सबको बाधा होनी चाहिये! परन्तु प्रारब्ध रहते हुए भी मनुष्यको बोध होता है! इसमें खास बात यह है कि आत्मा शुद्ध है। प्रारब्ध अन्तःकरणमें है, आत्मामें नहीं है। आत्मा सबकी शुद्ध है। अशुद्धि अन्तःकरणमें होती है। अन्तःकरण ‘करण’ है, ‘कर्ता’ नहीं है। आत्मामें कभी अशुद्धि आती ही नहीं। आत्मामें कोई कर्म (प्रारब्ध, संचित और क्रियमाण) पहुँचता ही नहीं। साधककी दृष्टि आत्माकी तरफ रहनी चाहिये। आत्मस्वरूपकी तरफ दृष्टि रहेगी तो बहुत जल्दी काम होगा। अतः अपने स्वरूपमें स्थित हो जाओ—‘**समदुःखसुखः स्वस्थः**’ (गीता १४। २४)।

मेरा कुछ नहीं है और मेरेको कुछ नहीं चाहिये—ये दो बातें साधकके लिये बहुत बढ़िया हैं। हम ईश्वरके अंश हैं, इसलिये प्रकृतिका अंश हमारा नहीं है। प्राप्तमें ममता न हो और अप्राप्तकी कामना न हो तो जड़ताका सम्बन्ध छूट जायगा। जब बालक जन्मता है, तब वह माँ-बाप, भाई-बहन आदि किसीको भी नहीं पहचानता। उसका किसीके साथ भी सम्बन्ध नहीं होता। वह थोड़ा बड़ा होता है तो माँका संस्कार पड़ता है कि यह माँ है। फिर धीरे-धीरे वह पिता, भाई, बहन, चाचा, ताऊ आदिके साथ सम्बन्ध जोड़ता है। जब वह देखता है कि पैसा देनेसे खिलौना आ जाता है तो उसके मनमें यह बात जँच जाती है कि पैसा बड़ा कीमती है! जब विवाह होता है, तब स्त्रीके साथ सम्बन्ध जुड़ जाता है। फिर सास-ससुर, साला आदिके सम्बन्ध जुड़ जाता है। इस तरह अनेक सम्बन्ध जुड़ते जाते हैं। परन्तु मरते ही सब सम्बन्ध छूट जाते हैं! ऐसे छूट जाते हैं कि याद ही नहीं रहते! तात्पर्य है कि सभी सम्बन्ध ऊपरसे चिपकाये हुए हैं, वास्तवमें हैं नहीं। सब सम्बन्ध माने हुए हैं और नहीं माननेसे मिट जाते हैं—यह सबके अनुभवकी बात है। इसलिये साधकमें वैराग्य होना चाहिये। **जिसमें वैराग्य नहीं है, वह साधक कैसा!** थोड़े वैराग्यसे भी काम चल जायगा!

मेरा कुछ नहीं है (ममताका त्याग) और मेरेको कुछ नहीं चाहिये (कामनाका त्याग)—इन दो बातोंपर विचार करो तो बहुत लाभ होगा। मेरा कुछ नहीं है तो क्या चाहिये? शरीर मेरा है तो अन्न, जल, वस्त्र और मकान—ये चार चीजें चाहिये। शरीर मेरा नहीं है तो क्या चाहिये? कोई शंका करे कि रोटी नहीं मिलेगी तो मर जायँगे, तो क्या रोटी खाते-खाते नहीं मरोगे? अन्न खाते-खाते, जल पीते-पीते, वस्त्र पहनते-पहनते, मकानमें रहते-रहते मरना तो पड़ेगा ही! नया नुकसान क्या हुआ? रोटी नहीं मिलनेसे नरकोंमें तो जायँगे नहीं! हरेक भाई-बहन विचार करे कि हमारी चीज क्या है? हम साथमें क्या लाये थे और साथमें क्या ले जा सकते हैं? इसलिये सब झंझट छोड़ दो और ‘मेरा कुछ नहीं है और मेरेको कुछ नहीं चाहिये’—इन दो बातोंपर जोर लगाओ तो सब काम एकदम ठीक हो जायगा।

***　　　***　　　***

यह संसार सर्व है और परमात्मा सर्वव्यापक है। संसार परिवर्तनशील है और परमात्मा अपरिवर्तनशील है। संसारकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। परमात्माकी सत्तासे ही यह सत्तावाला दीख रहा है। जबतक आपकी दृष्टिमें संसार दीखता है, तबतक उसमें परमात्मा सर्वव्यापक है। अगर यह संसार लुप्त हो जाय तो परमात्मा किसमें व्यापक होंगे? उस समय व्यापक-व्याप्य भाव ही नहीं रहेगा, प्रत्युत केवल परमात्मा ही रहेंगे। उस परमात्माका वर्णन नहीं होता—‘**यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह**’ (तैत्तिरीय० २।

९) 'मनके सहित वाणी आदि समस्त इन्द्रियाँ जहाँसे उसे न पाकर लौट आती हैं'।

वैज्ञानिक भी कभी-न-कभी उस तत्त्वतक पहुँचेंगे, पर उनकी चाल धीमी और लम्बी है। कारण कि वैज्ञानिक पत्तेसे लेकर बीजकी तरफ चलते हैं, इसलिये बीजतक पहुँचनेमें उनको बहुत समय लगेगा। हमारे यहाँ कोई भी बात होती है तो मूलमें परमात्माको लेकर ही होती है। सब बातोंके मूलमें परमात्माको बताया गया है। रसोई बनानेका भी अन्तिम तात्पर्य परमात्मा है। व्याकरणके भी अन्तमें तात्पर्य परमात्मा है। गाने-बजानेके भी अन्तमें तात्पर्य परमात्मा है। हमारे यहाँ जो कुछ है, सब परमात्माके ही निमित्त है। परमात्मामें ही सबकी समाप्ति होती है। तात्पर्य है कि वैज्ञानिकलोग वृक्षके पत्तोंसे लेकर डंठल, टहनी, डाली और तनेसे होते हुए मूलतक जानेकी चेष्टा करते हैं; परन्तु हमलोग बीज (मूल)-से चलते हैं। डाली, टहनी, पत्ते, फूल, फल आदि सब बीजका ही विस्तार है। बीजसे ही सब चीजें पैदा होती हैं। परमात्मा सबके बीज हैं—

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्।

(गीता ७। १०)

'हे पृथानन्दन! सम्पूर्ण प्राणियोंका अनादि बीज मुझे जान।'

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता॥

(गीता १४। ४)

'हे कुन्तीनन्दन! सम्पूर्ण योनियोंमें (प्राणियोंके) जितने शरीर पैदा होते हैं, मूल प्रकृति तो उन सबकी माता है और मैं बीज-स्थापन करनेवाला पिता हूँ।'

परमात्माके अन्तर्गत सब-के-सब आ जाते हैं। अतः सब परमात्मा ही है—'**वासुदेवः सर्वम्**' (गीता ७। १९)। बीजसे ही सब पत्ते, फल, फूल आदि पैदा होते हैं और फिर उनसे हजारों-लाखों बीज पैदा होते हैं! एक बीजमें सैकड़ों कोसोंका जंगल विद्यमान है! संसारमें तो बाजरीसे बाजरी पैदा होती है, गेहूँसे गेहूँ पैदा होता है आदि, पर भगवान् ऐसे नहीं हैं। एक ही भगवान्‌रूपी बीजसे सब प्रकारकी वस्तुएँ पैदा होती हैं! अतः अपना कल्याण चाहनेवालेको स्वीकार कर लेना चाहिये कि सब परमात्मा ही हैं।

***　　　***　　　***

श्रोता—सुखासक्ति कैसे उत्पन्न होती है और यह कैसे मिटे?

स्वामीजी—पहले जो अनुकूलतामें सुख भोगा है, उस भोगके संस्कारसे सुखासक्ति पैदा होती है। सुखासक्ति भीतर बैठी हुई है और इसका मिटना कठिन होता है। इसको मिटानेके लिये भगवान्‌से प्रार्थना करो। सच्चे हृदयसे आर्त होकर 'हे नाथ! हे नाथ!' पुकारो। असक्ति न मिटनेका दुःख होना चाहिये। जितना सुख भोगा है, उसका सवाया-डेढ़ा दुःख हो जाय तो आसक्ति मिट जायगी। आसक्ति मिटती नहीं! क्या करूँ? कैसे करूँ? कहाँ जाऊँ? किससे पूछूँ?—ऐसी मनमें व्याकुलता हो जाय तो आसक्ति मिट जायगी। सुख लेते रहोगे तो जल्दी मिटेगी नहीं। आप सुखके लिये ही सब काम करते हैं तो फिर आसक्ति कैसे छूटे?

अगर आप अपना कल्याण चाहते हैं, मुक्ति चाहते हैं तो सुखासक्ति छोड़नी ही पड़ेगी, नहीं तो जन्म-मरण छूटना मुश्किल है! सुखासक्ति बड़ी भारी बाधा है! इसलिये व्याकुल होकर भगवान्‌से प्रार्थना करो। सुखासक्ति छूटनेकी इच्छा जोरदार होनी चाहिये। सत्संग करनेसे भी लाभ होता है और सुखासक्ति

मिटती है। भक्तोंके चरित्र पढ़नेसे भी लाभ होता है।

जो संत ईश्वरभक्त जीवनमुक्त पहले हो गये।
उनकी कथाएँ गा सदा मन शुद्ध करने के लिये॥

श्रोता—अचिन्त्यका ध्यान (चुप साधन) सरल है या कठिन है?

स्वामीजी—दोनों ही बातें हैं, सरल भी है और कठिन भी है।

श्रोता—सरल कैसे है?

स्वामीजी—सरल ऐसे है कि 'है' (सत्तामात्र)-को देखे। 'है' एक व्यापक तत्त्व है। जैसे, हम कहते हैं कि ईंट है, चूना है, पत्थर है, लोहा है, लकड़ी है, मकान है, वृक्ष है, मनुष्य है, पशु है—इनमें ईंट, चूना आदिको न पकड़कर जो 'है' चीज है, केवल उसको पकड़ो। जड़ वस्तुको मुख्य न मानकर 'है' को मुख्य मानो। जैसे, 'घड़ी है'—इसमें जड़ वस्तु घड़ी मुख्य है, पर 'है घड़ी'—इसमें 'है' मुख्य है। आपने जड़ वस्तुको मुख्य मानकर उसके साथ 'है' लगाया है। वास्तवमें 'है' मुख्य रहना चाहिये। यह 'है' का अर्थात् सत्तामात्रका ध्यान बहुत सुगम है।

श्रोता—जैसे अन्तःकरणसे किये जानेवाले ध्यानका अभ्यास करना पड़ता है, ऐसे ही क्या सत्तामात्रके ध्यानका भी अभ्यास करना पड़ता है?

स्वामीजी—नहीं। इसमें अभ्यास नहीं है। इसमें विवेक मुख्य है। जैसे, 'यह कपड़ा है'—इसमें 'कपड़ा' पहले है, 'है' पीछे है, पर वास्तवमें 'है' पहले है, पीछे 'कपड़ा' है। 'कपड़ा है'—इसमें कपड़ा मुख्य रहेगा, 'है' गौण रहेगा, और 'है कपड़ा'—इसमें 'है' मुख्य रहेगा, कपड़ा गौण रहेगा।

जो ध्यान कराते हैं अथवा ध्यान करते हैं, वे तत्त्वको जानते नहीं! वास्तवमें ध्यानको करना नहीं है, प्रत्युत समझना है। समझनेसे सदाके लिये ध्यान हो जाता है!

'है' की तरफ वृत्ति होनेमें समय नहीं लगता। चलते-फिरते, उठते-बैठते हर समय 'है' की तरफ वृत्ति हो सकती है। इसके लिये एकान्तकी जरूरत नहीं है। इसमें करना कुछ नहीं है, केवल जानना है। सब संसार 'है' के भीतर ही है। संसारमें 'है' नहीं है, प्रत्युत 'है' में संसार है। 'है' सबका आधार है। **परमात्मा सब जगह 'है'-रूपसे परिपूर्ण है—यह स्वीकृति है, अभ्यास नहीं।** संसार तो परिवर्तनशील है, पर 'है' में परिवर्तन नहीं होता। जैसे 'है' में परिवर्तन नहीं होता, ऐसे 'है' को माननेमें अभ्यास नहीं होता। वह 'है' संसारकी अपेक्षा रखनेवाला नहीं है, प्रत्युत संसारका आधार है। वह 'है' ज्यों-का-त्यों है। जैसे पृथ्वीपर कोई नाचे या न नाचे, पृथ्वी तो रहेगी ही, ऐसे ही कोई 'है' को याद करे या न करे, 'है' तो रहेगा ही।

*** *** ***

मेरी एक ही बात है कि जल्दी परमात्माकी प्राप्ति करो! यह काम सबसे पहले कर लेना चाहिये। शरीरोंका पता नहीं है। अगर स्वास्थ्य ठीक नहीं रहा, वृत्ति ठीक नहीं रही, पागल हो गये तो क्या करोगे? परमात्मप्राप्ति बहुत सरल है, पर संसारकी इच्छा होनेसे कठिन मालूम देती है। **हम परमात्माके अंश हैं—यह बात हमारे लिये बड़ी भारी सहायक है, मामूली नहीं है! परमात्माके अंशको करना क्या है? परमात्माके अंश होनेसे हम स्वतः-स्वाभाविक परमात्माके हैं, संसारके नहीं हैं।**

श्रोता—नींदके समय क्या ज्ञानी और अज्ञानी एक हो जाते हैं?

स्वामीजी—शरीरकी दृष्टिसे सब एक ही हैं। ज्ञानीका 'शरीर मैं हूँ' मिट जाता है, शरीर नहीं मिटता।

दोनोंकी नींदमें फर्क यह रहता है कि अज्ञानीमें 'मैं सोया था'—यह भाव रहता है, पर ज्ञानीमें 'मैं सोया था'—यह भाव नहीं रहता। ज्ञानी निरन्तर 'है' में रहता है।

*** *** ***

मन एक करण है। जैसे कलम स्वतन्त्र नहीं होती, लिखनेवालेके अधीन होती है, ऐसे ही मन बुद्धिके अधीन होता है। मन स्वतन्त्र नहीं है। इसलिये मनको दोष देना गलत है। मन वही करता है, जो कर्तामें होता है। जैसे कलम वही लिखती है, जो लिखनेवाला चाहता है, ऐसे ही मन वही करता है, जो कर्ता चाहता है। कर्ता ठीक होगा तो मन ठीक हो ही जायगा—इसमें सन्देह नहीं है। गलती खुदकी होती है, मनकी नहीं। कर्ताके अनुसार बुद्धि होती है और बुद्धिके अनुसार मन होता है। आप तत्परतासे भजन-ध्यानमें लग जाओ तो मन भी भजन-ध्यानमें लग जायगा। आप अच्छे हो जाओ तो मन अच्छा हो ही जायगा। सीधी सिद्धान्तकी पक्की बात है! आप हाथसे कोई दोषयुक्त काम करते हो तो उसमें हाथका दोष नहीं है, प्रत्युत आपका खुदका दोष है। जैसे हाथ काम करता है, ऐसे ही मन काम करता है। आप शुद्ध हो जाओ, आपका विचार शुद्ध हो जाय तो मन शुद्ध हो जायगा। सन्त-महात्माओंका मन स्वाभाविक शुद्ध होता है; क्योंकि उनके भीतर शुद्धि आ गयी, वे स्वयं शुद्ध हो गये। **आप शुद्ध हो जाओ तो आपके मन-बुद्धि आदि सब शुद्ध हो जायँगे, आपकी क्रिया शुद्ध हो जायगी, आपका व्यवहार शुद्ध हो जायगा!**

श्रोता—कर्ताको शुद्ध कैसे किया जाय?

स्वामीजी—उद्देश्य शुद्ध बनाओ तो कर्ता शुद्ध हो जायगा। हमें परमात्माकी प्राप्ति करनी है—यह उद्देश्य होगा तो कर्ता शुद्ध हो ही जायगा। झूठ, कपट आदि सब छूट जायँगे। **एक परमात्मप्राप्तिका लक्ष्य बना लो तो सब काम ठीक हो जायगा। जबतक आप ठीक नहीं होंगे, तबतक कोई ठीक नहीं होगा, दुनिया सब खराब होगी। आप ठीक हो जाओ तो दुनिया सब आपके लिये ठीक हो जायगी, शुद्ध हो जायगी! आप इतने पवित्र बन जाओगे कि आपका दर्शन करनेसे दुनियाको लाभ होगा!**

रात-दिन भगवान्‌में लग जाओ और भगवान्‌को पुकारो कि 'हे मेरे नाथ! हे मेरे नाथ! हे मेरे प्रभो! हे मेरे प्रभो!' सब काम ठीक हो जायगा! आनन्द हो जायगा! मौज हो जायगी! सबके लिये एक ही बात है कि 'हे नाथ! आपको भूलूँ नहीं। हे नाथ! ऐसी कृपा करो कि आपको भूलूँ नहीं'।

एक परमात्माकी प्राप्ति करनेका ही उद्देश्य होना चाहिये, और इसकी सिद्धिमें बड़ी सरल बात है कि परमात्मा ही है! छोटी-से-छोटी चीज और बड़ी-से-बड़ी चीज परमात्मा ही है। परमात्माके सिवाय कुछ नहीं है—'**वासुदेवः सर्वम्**' (गीता ७। १९)। भाइयो! बहनो! सुनो, सार बात यही है! यह एक निश्चय कर लो कि सब एक परमात्मा ही है।

मनसा वचसा दृष्ट्या गृह्यतेऽन्यैरपीन्द्रियैः।
अहमेव न मत्तोऽन्यदिति बुध्यध्वमञ्जसा॥

(श्रीमद्भा० ११। १३। २४)

'मनसे, वाणीसे, दृष्टिसे तथा अन्य इन्द्रियोंसे भी जो कुछ ग्रहण किया जाता है, वह सब मैं ही हूँ। अतः मेरे सिवाय और कुछ भी नहीं है—यह सिद्धान्त आपलोग विचारपूर्वक शीघ्र समझ लें अर्थात् स्वीकार कर लें।'

सबसे श्रेष्ठ बात, सबसे ऊँची बात, सबसे सच्ची बात, सबकी अन्तिम बात, सबकी सार बात यह है कि परमात्मा ही है!

*** *** ***

श्रोता—साधन करते हैं, लेकिन अन्त:करणमें काम, क्रोध आदि विकार आ जाते हैं!

स्वामीजी—वे अन्त:करणमें आते हैं, हमारेमें नहीं आते। उनका विरोध मत करो। विरोध करनेसे सम्बन्ध जुड़ता है। वे आयें या न आयें, उनकी उपेक्षा करो, उदासीन हो जाओ। जैसे शरीरपर धूप आये अथवा छाया आये, हमारा उससे कोई मतलब नहीं, ऐसे ही विकार आयें अथवा जायँ, उनसे हमारा कोई मतलब नहीं। उनकी बेपरवाह कर दो। उनको महत्त्व मत दो।

श्रोता—जैसे महापुरुषोंके अन्त:करणमें कोई विकार नहीं आता, ऐसे ही हमारे अन्त:कारणमें भी कोई विकार नहीं आये, ऐसा कोई उपाय बताइये।

स्वामीजी—उपाय है—आप 'है' में स्थित हो जाओ। 'है' में कभी कोई विकार आता ही नहीं। वास्तवमें आपकी स्थिति स्वत: 'है' में है, केवल इसको स्वीकार कर लो। विकारोंको देखो ही मत, ध्यान मत दो। वह अच्छा है कि मन्दा है, कुछ मत देखो, उपेक्षा कर दो। अपने उससे कुछ लेना-देना नहीं है। उपेक्षा बहुत बढ़िया उपाय है। उससे न राग करो, न द्वेष करो; न अच्छा समझो, न बुरा समझो। उससे तटस्थ हो जाओ तो वह अपने-आप मिट जायगा। तटस्थ होनेसे स्वरूपमें स्थिति होती है। तटस्थ होना ज्ञानयोग है। भगवान्‌को पुकारना भक्तियोग है। भगवान्‌का सहारा लेना बहुत बढ़िया है।

श्रोता—जब कोई प्रतिकूल व्यवहार करता है, तब क्रोध आ जाता है। उस समय उसकी उपेक्षा कैसे करें?

स्वामीजी—उस समय 'हे नाथ! हे मेरे नाथ! बचाओ'—ऐसे प्रार्थना करो। भगवान्‌को याद करनेसे बहुत लाभ होता है।

श्रोता—क्रोध आनेपर तो होश ही नहीं रहता!

स्वामीजी—आप पहलेसे विचार रखो, होश आ जायगा।

श्रोता—महापुरुषोंके जीवनमें चमत्कार देखनेको मिलते हैं........

स्वामीजी—चमत्कार दीखना महापुरुषकी पहचान नहीं है। यह कोई मूल्यवान् बात नहीं है। सब चमत्कार मायामें हैं।

महापुरुषकी पहचान यह है कि उनके संगसे अपनेको स्वत:-स्वाभाविक शान्ति मिलती है। उनसे बिना पूछे अपनी शंकाओंका समाधान हो जाता है। वे कोई बात कह रहे हैं तो बिना प्रसंगके बीचमें ऐसी बात आ जायगी, जिससे हमारे मनकी शंकाका समाधान हो जायगा!

श्रोता—मनमें अच्छे-बुरे विचार आते रहते हैं, जिससे भक्तिमें मन लगता नहीं! इसका कोई उपाय बतायें।

स्वामीजी—'हे नाथ! हे नाथ! हे प्रभो! हे मेरे नाथ!'—ऐसे पुकारो। सब अपने-आप ठीक हो जायगा।

***   ***   ***

श्रोता—रामायणमें आया है—

रावनारि जसु पावन गावहिं सुनहिं जे लोग।
राम भगति दृढ़ पावहिं बिनु बिराग जप जोग॥

(मानस, अरण्य० ४६क)

'जो लोग रावणके शत्रु श्रीरामजीका पवित्र यश गायेंगे और सुनेंगे, वे वैराग्य, जप और योगके बिना ही श्रीरामजीकी दृढ़ भक्ति पायेंगे।'

बिना वैराग्य, बिना जप और बिना योगके दृढ़ भक्ति कैसे हो सकती है?

स्वामीजी—भगवान्‌का यश सुननेसे ऐसा विश्वास हो जाय कि जैसे भगवान्‌ने दुष्टोंको मारा, ऐसे मेरी दुर्वृत्तियोंका विनाश भी भगवान् ही करेंगे। ऐसा पूरा विश्वास होनेपर वैराग्य, जप और योगकी जरूरत नहीं है। वास्तवमें हमारे वैराग्य, जप, योग करनेसे काम नहीं होगा, प्रत्युत भगवान्‌पर विश्वास होनेसे उनकी कृपाशक्तिसे काम होगा। भगवान्‌की कृपासे असम्भव भी सम्भव हो जाता है। अपना कोई उद्योग नहीं, केवल भगवान्‌पर पूरा विश्वास हो जाय।

श्रोता—कभी लगता है कि भगवान् मेरे पासमें हैं, और कभी लगता है कि मेरेसे बहुत दूर हैं, उनको प्राप्त करनेका कोई साधन नहीं दीखता, अब आप ही बताइये कि मैं क्या करूँ?

स्वामीजी—भगवान्‌पर विश्वास रखो कि उनकी कृपासे होगा। भगवान् कभी नजदीक, कभी दूर दीखते हैं तो इसमें वृत्तियाँ कारण हैं। वृत्तियाँ कभी सात्त्विक होती हैं, कभी राजसिक होती हैं, कभी तामसिक होती हैं। जब सात्त्विक वृत्ति होती है, तब भगवान् नजदीक दीखते हैं। एक अच्छे साधक साधु थे। वे कहते थे कि जब मैं भजन करता हूँ, तब भगवान् दूर दीखते हैं और जब भजन नहीं करता, तब नजदीक दीखते हैं! बिल्कुल उल्टी बात! इसका तात्पर्य यह है कि हम साधनके द्वारा भगवत्प्राप्ति कर लेंगे—यह विश्वास मत रखो। भगवान्‌की कृपासे काम होगा। साधनके बलसे, अपनी शक्तिसे भगवान्‌की प्राप्ति नहीं होती।

संसारमें जैसे वस्तुका मूल्य होता है, ऐसे भगवान्‌का कोई मूल्य नहीं है। जिस वस्तुका जो मूल्य होता है, उसको चुकानेसे वह वस्तु हरेकको मिल जाती है; परन्तु भगवान् किसी मूल्यसे नहीं मिलते, प्रत्युत कृपासे मिलते हैं।

परमात्माकी प्राप्ति सुगम कैसे है? इसपर विचार करें। ऐसी कोई जगह, कोई समय, कोई वस्तु नहीं है, जिसमें परमात्मा न हों। जो सब जगह परिपूर्ण हो, उसकी प्राप्ति क्यों नहीं हो रही है? उसकी प्राप्ति तभी हो सकती है, जब आपकी इच्छा परमात्माको ही प्राप्त करनेकी हो। परन्तु दूसरी इच्छाएँ रहनेके कारण एक इच्छा नहीं होती। तात्पर्य है कि परमात्माकी प्राप्ति कठिन नहीं है, प्रत्युत उनकी प्राप्तिकी अनन्य इच्छा होनी कठिन है। इसमें दो बातें हैं—'मेरा कुछ नहीं है' और 'मेरेको कुछ नहीं चाहिये'। ये दो बातें पूरी होनी चाहिये। फिर परमात्माकी प्राप्ति हो ही जायगी।

अनन्य इच्छा न होनेके कारण सब जगह रहते हुए भी परमात्माको देख नहीं सकते। **जैसे बिना आँखोंवाला आदमी देख नहीं सकता, ऐसे दूसरी इच्छा रखनेवाला परमात्माको देख नहीं सकता!** दूसरी इच्छा रहनेसे परमात्माको देखनेमें आड़ लग जाती है। इसलिये एक परमात्माकी इच्छाके सिवाय दूसरी कोई इच्छा नहीं रहे।

मुख्य इच्छाएँ दो हैं—संग्रह करना और भोग भोगना। अवान्तर इच्छाओंकी तो गिनती ही नहीं है! कोई भी इच्छा नहीं रहे तो परमात्मा प्राप्त हो जायँगे। आप चाहे आस्तिक हों या नास्तिक हों, ईश्वरको मानते हों या नहीं मानते हों, पर आपमें कोई इच्छा नहीं हो तो परमात्मा दीख जायँगे! अगर इच्छा नहीं हो तो कोई भी इच्छा नहीं हो, और इच्छा हो तो एक परमात्माकी ही इच्छा हो तो परमात्मा दीख जायँगे। दोनों बातोंमें चाहे जो कर लो। **कुछ भी इच्छा नहीं करोगे तो दूसरी चीज सामने आयेगी ही नहीं, केवल परमात्मा ही सामने आयेंगे।**

सब परमात्माका स्वरूप है—ऐसा मान लो तो परमात्माकी प्राप्ति हो जायगी। यह बहुत बढ़िया साधन है! इसमें दूसरी वृत्ति ही बाधक है। **वास्तवमें प्राप्ति परमात्माकी ही होती है। परन्तु आपने दूसरी कल्पना की है, इसलिये दूसरी वस्तु दीखती है।** दूसरा है ही नहीं, केवल परमात्मा ही हैं—यह मान्यता दृढ़ हो जायगी तो परमात्मा दीख जायँगे। इसमें अभ्यास नहीं है।

सबसे पहले ज्ञान परमात्माका ही होता है, उसके बाद संसारका ज्ञान होता है। हम देखते हैं कि 'वस्तु है, मनुष्य है, पशु है, वृक्ष है, आदि' तो यह परमात्मप्राप्तिका मार्ग नहीं है। 'है वस्तु, है मनुष्य, है पशु'—इस प्रकार 'है' को पहले देखना चाहिये। 'वस्तु है'—इसमें वस्तुकी सत्ता मुख्य है। वस्तुकी सत्ता मुख्य न होकर 'है वस्तु'—इस प्रकार परमात्माकी सत्ता मुख्य होनी चाहिये। वस्तुपर दृष्टि न होकर 'है' पर दृष्टि होनी चाहिये।

श्रोता—कामना-ममता मन-बुद्धिमें हैं, सत्तामें नहीं है। हम तो सत्ता हैं। मन-बुद्धि हमारे नहीं हैं। फिर मन-बुद्धिमें कामना हो या न हो, हमें क्या?

स्वामीजी—आपकी बात बिल्कुल ठीक है, पर कोरी बातें सीखकर नहीं, अनुभव होना चाहिये। हमारे स्वरूपमें कामना नहीं है—इसका अनुभव होना चाहिये। कामना करण (अन्तःकरण)-में है, कर्तामें नहीं है। आपने मन-बुद्धिके साथ एकता कर ली, इसलिये मन-बुद्धिमें होनेवाली चीज अपनेमें होनेवाली दीखने लग गयी। जीवका स्वरूप नित्य शुद्ध-बुद्ध-मुक्त है।

*** *** ***

भगवान्ने गीताका उपदेश युद्धके आरम्भमें दिया। क्या वह जगह बहुत बढ़िया थी? क्या उस समय एकान्त ज्यादा था? क्या परमात्मप्राप्तिकी कोई विशेष परिस्थिति थी? युद्धमें दिनभर मनुष्योंको मारनेके सिवाय और क्या काम है! ऐसी भयंकर परिस्थिति और क्या होगी? परन्तु ऐसी परिस्थितिमें भी भगवत्प्राप्ति हो सकती है! भगवत्प्राप्ति हरेक परिस्थितिमें हरेक आदमीको हो सकती है। ऐसा मैंने अध्ययन किया है! मैं इस बातको जानता हूँ! युद्ध-जैसी क्रूर परिस्थितिमें भी भगवत्प्राप्ति हो सकती है। **भगवत्प्राप्तिमें कोई बाहरी परिस्थिति कारण नहीं है। यह सब परिस्थितियोंमें हो सकती है।** केवल मनकी चाहना होनी चाहिये।

मेरी धारणा ऐसी है कि जितने आदमी सत्संगमें आये हैं, वे अगर चाहें तो सब जीवन्मुक्त हो सकते हैं! परमात्मप्राप्तिके लिये कोई परिस्थिति बाधक होती ही नहीं। मनुष्यमात्रको परमात्मप्राप्ति हो सकती है; परन्तु हिन्दुओंमें ऐसे संस्कार हैं कि उन्हें जल्दी परमात्मप्राप्ति हो सकती है! परमात्मप्राप्ति सबके लिये बहुत सुगम है। इतना सुगम काम कोई है ही नहीं! मैं ठगाई नहीं कर रहा हूँ! आपलोगोंको धोखा नहीं दे रहा हूँ! सच्ची बात कह रहा हूँ। जितने स्त्री-पुरुष हैं, सबको परमात्मप्राप्ति हो सकती है। परन्तु आप परवाह ही नहीं करते! ध्यान ही नहीं देते!

*** *** ***

श्रोता—भगवान्‌की विस्मृति कैसे कम हो?

स्वामीजी—मनमें लगन हो तो विस्मृति कम होगी। जैसे रोगीको कोई दवाई बतायी जाय तो वह भूलता नहीं, ऐसे ही जन्म-मरणरूपी रोगकी दवाई मानोगे तो भगवान्‌को भूलोगे नहीं।

श्रोता—साक्षी परमात्मा है—यह बात कभी तो समझमें आती है, कभी इसमें सन्देह होने लगता है!

स्वामीजी—सन्देह क्यों होता है? शंका क्या होती है, जिसके कारण सन्देह होता है?

श्रोता—उसमें ऐश्वर्य नहीं दीखता है!

स्वामीजी—**जो ऐश्वर्यके भक्त होते हैं, वे भगवान्‌के भक्त नहीं होते।** कोई आदमी आइसक्रीम बनानेकी मशीन रखता है तो उसका मशीनसे स्नेह नहीं है, प्रत्युत रुपयोंसे स्नेह है; क्योंकि मशीनसे बनी आइसक्रीम बेचनेसे रुपये पैदा होते हैं। ऐसे ही आपकी भक्ति भगवान्‌के ऐश्वर्यसे है तो आपका भगवान्‌से प्रेम नहीं है, प्रत्युत उनके ऐश्वर्यसे प्रेम है। भगवान्‌से भी आप ऐश्वर्य चाहते हो तो आपका सम्बन्ध ऐश्वर्यसे है, भगवान्‌से नहीं है।

***   ***   ***

श्रोता—आपने कहा है कि साधन तो अलग-अलग होते हैं, पर साधन-तत्त्व एक होता है। कर्मयोग, ज्ञानयोग आदि सभी साधन मिलकर साधन-तत्त्व होता है। मुक्त पुरुषका मत साधन-तत्त्व होता है; परन्तु वह साधन-तत्त्वको ही साध्य मानकर उसमें सन्तोष कर लेता है, जो गलती है। इसको समझानेकी कृपा करें।

स्वामीजी—जैसे ब्राह्मण-जातिमें सभी ब्राह्मण एक हो जाते हैं, ऐसे ही साधन-तत्त्व एक जाति है, जिसमें सब साधन एक हो जाते हैं। कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, लययोग, हठयोग, राजयोग, मन्त्रयोग आदि सभी साधन साधन-तत्त्वमें एक हो जाते हैं। सब साधन साधन-तत्त्वके अन्तर्गत आ जाते हैं। जो साध्य वस्तु है, वह अलग है। जो साधन-तत्त्वमें सन्तोष कर लेता है, वह वहीं अटक जाता है, साध्यतक नहीं पहुँचता। साधन-तत्त्व मार्ग होता है और साध्य गन्तव्य स्थान होता है।

पहुँचे पहुँचे एक मत, अनपहुँचे मत और।
संतदास घड़ी अरठ की, ढुरे एक ही ठौर॥

जबतक साध्य (प्रेम) न मिले, तबतक सन्तोष नहीं करना चाहिये। पर मनुष्य उसको अपने बलसे जल्दी प्राप्त नहीं कर सकता। भगवान्‌की कृपासे वह साध्य अपने-आप आ जाता है! अचानक भीतरसे आ जाता है, और तृप्ति हो जाती है! हम प्रेम प्राप्त कर लेंगे—ऐसा नहीं होता। केवल प्रेम प्राप्त करनेकी इच्छा होती है। **प्रेम प्राप्त होता है तो भगवान्‌की कृपासे अचानक प्राप्त होता है।** चाहना अपनी होती है, पर प्राप्ति भगवान्‌की कृपासे होती है।

साधन-तत्त्वमें मत-मतान्तर होते हैं। साधन-तत्त्वमें स्थित होनेसे आपसमें खटपट होती है, पर साध्य-तत्त्वमें मिल जानेके बाद खटपट नहीं होती। इसलिये साध्य-तत्त्वको प्राप्त महापुरुषोंमें खटपट नहीं होती, प्रत्युत उनके अनुयायियोंमें खटपट होती है। साधन-तत्त्वमें अपने मत (द्वैत, अद्वैत आदि)-का आग्रह रहता है, पर साध्य-तत्त्वकी प्राप्ति होनेपर अपने मतका आग्रह नहीं रहता, कोई मतभेद नहीं रहता। वास्तवमें परमप्रेम ही साध्य-तत्त्व है। इसकी प्राप्ति होनेपर ही पूर्णता होती है।

एक साधन-प्रेम होता है, एक साध्य-प्रेम होता है। प्रेमलक्षणा भक्ति साध्य-प्रेम है। पान्तु श्रवण, कीर्तन आदि नवधाभक्ति साधन-प्रेम है।

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

(श्रीमद्भा ७। ५। २३)

'भगवान्‌के गुण-लीला-नाम आदिका श्रवण, उनका कीर्तन, उनके रूप-नाम आदिका स्मरण, उनके चरणोंकी सेवा, पूजा-अर्चा, वन्दन तथा उनमें दासभाव, सखाभाव और आत्मसमर्पण—यह नौ प्रकारकी भक्ति है।'

इनमें श्रवण, कीर्तन और स्मरण—ये तीनों दूरसे हैं। पादसेवन, अर्चन और वन्दन—ये तीनों नजदीकसे हैं। दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन—ये तीनों बहुत नजदीकसे हैं। यह नवधाभक्ति साधन-भक्ति है।

*** *** ***

श्रोता—संसारमें हम कुछ देखते हैं तो उसका हमपर असर पड़ता है। ऐसी स्थितिमें हम क्या करें?

स्वामीजी—असरको महत्त्व मत दो। असरको महत्त्व देकर आप असली तत्त्व **'वासुदेवः सर्वम्'** को खो रहे हो, जो बहुत बड़ी गलती है! परमात्मा हमारे हैं, वह वस्तु हमारी नहीं है। आप आज ही पक्का विचार कर लो कि अब हम असरको महत्त्व नहीं देंगे, प्रत्युत भगवान्‌को महत्त्व देंगे; वस्तुको न देखकर भगवान्‌को देखेंगे। असरको महत्त्व न दो तो वह स्वतः मिट जायगा।

असर सजातीयतापर पड़ता है। जैसे, शब्दका असर कानपर पड़ता है, आँखपर नहीं पड़ता। दृश्यका असर आँखपर पड़ता है, कानपर नहीं पड़ता। ऐसे ही संसारका असर मन-बुद्धिपर पड़ता है, आपपर नहीं पड़ता। आप परमात्माके अंश हैं, चेतन हैं, निर्विकार हैं। प्रकृतिका सब कार्य जड़ है, विकारी है। आपकी जाति अलग है। परन्तु आप मन-बुद्धिको अपना मानते हो, इसलिये आपपर असर पड़ता दीखता है। वास्तवमें आपके स्वरूपतक कोई वस्तु पहुँचती ही नहीं। आप सत्तास्वरूप हैं और वस्तुओंकी सत्ता नहीं है—**'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः'** (गीता १५। ७) 'असत्‌का तो भाव (सत्ता) विद्यमान नहीं है और सत्‌का अभाव विद्यमान नहीं है।' असत्‌का असर आपपर कैसे पड़ेगा? मन-बुद्धि प्रकृतिके अंश हैं, आप परमात्माके अंश हो। निर्विकारमें विकार कैसे पहुँच सकता है? एक बात हरदम याद रखो कि हम परमात्माके अंश हैं। फिर ठीक हो जायगा! प्रकृतिमें होनेवाला विकार आपतक कैसे पहुँचेगा? कुत्ते, गधे, गाय आदिके मन-बुद्धि जिस जातिके हैं, उसी जातिके आपके मन-बुद्धि हैं। जैसे उनके मन-बुद्धि आपके नहीं हैं, ऐसे ही आपके मन-बुद्धि भी वास्तवमें आपके नहीं हैं।

श्रोता—आपकी ये सब बातें समझने और स्वीकार करनेके बाद भी किसी वजहसे मरनेतक पूरी तरहसे व्यवहारमें या अनुभवमें न आयें तो आगे क्या होगा?

स्वामीजी—किया हुआ साधन जायगा नहीं। **जहाँतक हम पहुँचे हैं, जितना साधन हमने किया है, वह कभी नष्ट नहीं होगा।** कितने ही वर्ष बीत जायँ, कितने ही जन्म बीत जायँ, आगे सत्संग मिलते ही वह स्वाभाविक चट जाग्रत् हो जायगा। जैसे रास्ता चलते-चलते आदमी सो जाय तो वह वापिस पीछे नहीं चला जायगा! जितना रास्ता कट गया, उतना तो कट ही गया। अब वह उससे आगे चलेगा। ऐसे ही साधकको पहली स्थिति जल्दी प्राप्त हो जायगी। इसीलिये कई साधक घबरा जाते हैं कि पहले तो साधन तेजीसे चलता था, पर अब धीरे चलता है! धीरे इसलिये चलता है कि यह नया काम है। पूर्वका काम जल्दी हो गया। तात्पर्य है कि साधन-पूँजी बिल्कुल भी नष्ट नहीं होती। जितना आपने साधन किया है, जितना विवेक हुआ है, उतना आपका काम हो ही गया! गीतामें छठे अध्यायके अन्तमें योगभ्रष्टकी गतिका वर्णन आता है, उसको पढ़ो।

*** *** ***

वास्तवमें हमारा जीवन इतना ही नहीं है। हमारा जीवन बहुत बड़ा है! इस जीवनके पहले भी हमारा बहुत जीवन था और इस जीवनके बाद भी हमारा बहुत जीवन है। सच्ची बात पूछो तो हमारा अमर जीवन है! हम कभी मरते ही नहीं! इस अमर जीवनका अनुभव करना मनुष्यका खास धर्म

है। यह अनुभव मनुष्ययोनिमें ही हो सकता है। देवयोनिमें भी यह अनुभव नहीं हो सकता। एक मनुष्यजन्म ऐसा है, जिसमें सदाके लिये आनन्द प्राप्त किया जा सकता है। ऐसा महान् आनन्द प्राप्त किया जा सकता है, जिसमें दुःखका स्पर्श ही नहीं है—

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥

(गीता ६। २२)

'जिस लाभकी प्राप्ति होनेपर उससे अधिक कोई दूसरा लाभ उसके माननेमें भी नहीं आता और जिसमें स्थित होनेपर वह बड़े भारी दुःखसे भी विचलित नहीं किया जा सकता।'

हमारे मनमें तो आता है कि सब-के-सब इस परमपदको प्राप्त कर लें! इसके सब अधिकारी हैं, सब पात्र हैं, सबमें योग्यता है, सबमें सामर्थ्य है। केवल इस पदको प्राप्त करनेकी इच्छा होनी चाहिये।

आरम्भमें तीन बातें होनी चाहिये। **किसीको बुरा न समझना, किसीका बुरा न चाहना और किसीकी बुराई न करना—ये तीन बातें होंगी तो आपके लिये परमपदकी प्राप्ति सुगम हो जायगी।** इन तीन बातोंका नियम ले लो। इसको कर्मयोग कहते हैं। कर्मयोगके बाद ज्ञानयोग और भक्तियोग अपने-आप सिद्ध हो जायँगे। आपका जीवन इतना पवित्र हो सकता है कि आपके दर्शनसे, आपके भाषणसे, आपके चिन्तनसे, आपको याद करनेसे दूसरोंको शान्ति मिले! आप सब-के-सब ऐसे बन सकते हो! हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि सभी इस पदको प्राप्त कर सकते हैं!

किसीमें बुराई दीखती है तो वह आगन्तुक दोष है। मनुष्य सबके लिये भला तो हो सकता है, पर सबके लिये बुरा नहीं हो सकता। सर्वथा बुरा कोई हो ही नहीं सकता।

एक जगहकी बात है, किसीने गाँधीजीकी कही हुई बात सुनायी कि ईसाईयोंकी बात बहुत बढ़िया है। मैंने उससे कहा कि तुम ईसाईधर्मकी जितनी बातें बताओगे, उनसे बढ़कर बात मैं हिन्दुओंकी बता दूँगा! उसने कहा कि ईसा मसीहने अपना बुरा करनेवालोंका भी भला चाहा और भगवान्‌से प्रार्थना की कि इनको सद्बुद्धि दो। मैंने कहा कि सद्बुद्धि देनेकी प्रार्थनासे सिद्ध होता है कि ये दुर्बुद्धि हैं। अगर उनको दुर्बुद्धि नहीं माना तो 'इनको सद्बुद्धि दो'—ऐसा कहनेकी क्या जरूरत है? एक भक्तचरितकी गुजराती पुस्तक है। उसमें एक सन्तका चरित आया है। वे रात-दिन भजनमें लगे रहते थे। एक दिन वे जंगलमें बैठे भजन कर रहे थे। कुछ डाकू एक जगह डाका डालकर भागने लगे तो सिपाहियोंको पता लग गया और वे उन डाकुओंका पीछा करने लगे। डाकुओंने सारा माल उस सन्तके पास रख दिया और जंगलमें जाकर छिप गये। सिपाही वहाँ आये और उन्होंने सन्तके पास माल पड़ा देखा तो सन्तको डाकू समझकर मारने लगे। वे सन्त बोले—***'बधू तू जाणे छे'*** अर्थात् 'हे प्रभो, सब आप ही जानते हो। हमने कौन-सा पाप किया, जिसका अभी फल मिल रहा है—यह हम जानते नहीं'। सन्तने उनकी दुर्बुद्धि मानी ही नहीं, उनको बुरा समझा ही नहीं! आप सब-के-सब ऐसे सन्त हो सकते हैं!

*** *** ***

श्रोता—सुबह आपने फरमाया था—***'सहजां मारग सहज का'***। इस बातको सुननेपर मालूम होता है कि बहुत ही सरल मार्ग है, लेकिन जब इसमें चलते हैं तो इतना सहज लगता नहीं! बीच-बीचमें संसारकी तरफ रुचि हो जाती है!

स्वामीजी—संसारकी तरफ रुचि नहीं हो, तब सहज है।

श्रोता—संसारसे रुचि किस तरह छूटे?

स्वामीजी—'हे नाथ! हे मेरे नाथ!' पुकारना शुरू कर दो। पुकारते-पुकारते जब हृदयसे पुकार निकलेगी तो पट काम हो जायगा! अभी जिस अवस्थामें हो, जैसे हो, वैसे ही पुकारना शुरू कर दो।

*** *** ***

श्रोता—हम गृहस्थ महिलाओंको अपनी दिनचर्या कैसी रखनी चाहिये, जिससे हमारी साधना भी होती रहे और सांसारिक कर्तव्यका भी निर्वाह होता रहे?

स्वामीजी—एक बातका विशेष ख्याल रखें कि कोई समय निरर्थक न जाय। सब समय भगवान्‌के भजनमें और घरके काम-धंधेमें लगे। जिसमें काम-धंधा भी नहीं हो और भजन भी न हो, पर समय चला जाय—यह बड़ा भारी नुकसान है! यह बात हरेक भाई-बहनके लिये है कि समय खाली न जाय। **जिसका समय खाली नहीं जाता, उसकी उन्नति जरूर होती है—यह नियम है।** काम-धंधेमें तो भजन लगा दें, पर भजनमें काम-धंधा नहीं लगायें। अपने-आपको तो सदा, हर समय भगवान्‌का मानें कि मैं तो भगवान्‌का हूँ। यह सावधानी रखें कि किसी भी समय भगवान्‌को भूलें नहीं। भगवान्‌से प्रार्थना करें कि 'हे नाथ! ऐसी कृपा करो कि मैं आपको भूलूँ नहीं'।

*** *** ***

श्रोता—क्या महापुरुषके पासमें रहनेमात्रसे ही कल्याण हो जाता है या कुछ करना पड़ता है?

स्वामीजी—करना पड़ता नहीं, प्रत्युत करना स्वाभाविक होता है। क्या श्वास लेने पड़ते हैं? श्वास लेनेमें क्या जोर आता है? उनके पासमें रहनेसे स्वाभाविक साधन होता है।

महात्माओंके पास रहनेसे और उनको पहचाननेसे स्वतः-स्वाभाविक साधन होता है, प्रसन्नता होती है, आनन्द होता है, विलक्षणता होती है!

जो करना पड़ता है, वह नकली साधन होता है। करते-करते अपने-आप नकलीसे असली हो जाता है।

एक सिद्धान्तकी बात है कि जो साधन करना पड़ता है, वह नीचा होता है, नकली होता है। परन्तु जो साधन स्वाभाविक होता है, वह असली होता है। **जबतक साधन करना पड़ता है, तबतक साधन शुरू नहीं हुआ है। साधन शुरू होनेपर साधन करना नहीं पड़ता, अपने-आप होता है।** जैसे, श्वास लेने नहीं पड़ते, स्वतः चलते हैं। साधन-जैसी बढ़िया, प्यारी चीज कोई है ही नहीं, कोई हुई नहीं, कोई होगी नहीं, कोई हो सकती नहीं। जिससे जीवका उद्धार होता है, वह स्वतः-स्वाभाविक प्रिय होता है।

'सहजां मारग सहज का, सहज किया विश्राम।'
'सहज तन मन सहज पूजा। सहज सा देव नहीं और दूजा॥'

जो सन्त-महात्माओंके पास हैं, वे माँकी गोदीमें बैठे हैं! बिना किये स्वाभाविक साधन होता है, अच्छी-अच्छी बातें पैदा होती हैं, सत्संगमें अच्छी बातें मिलती हैं, आपसमें अच्छी बातें होती हैं। तात्पर्य है कि असली सत्संग मिलता है तो अच्छी बातें स्वाभाविक होती हैं, करनी नहीं पड़तीं।

श्रोता—सन्तोंकी कृपा कैसे प्राप्त हो?

स्वामीजी—कृपा तो है ही! जैसे, भगवान् नित्य हैं तो उनकी कृपा अनित्य थोड़े ही है! उनकी

कृपा भी नित्य है, स्वतः है, स्वाभाविक है। उनकी सब जीवोंपर स्वाभाविक कृपा होती है। क्या सूर्यसे कहना पड़ता है कि महाराज! प्रकाश करो? यही बात सन्त-महात्माओंके विषयमें है। मैं कृपा कर रहा हूँ—यह अभिमान सन्तोंमें होता ही नहीं। कृपा करना उनका स्वतः स्वभाव होता है।

जो महात्माकी बात मानेगा, उसमें गहरा उतरेगा, वह भी स्वाभाविक महात्मा बनता चला जायगा। जो महात्माको जितना-जितना जानेगा, उतना-उतना वह महात्मा बनता चला जायगा। महात्माको ठीक जान लेगा तो वह भी वैसा ही महात्मा हो जायगा।

संसारमें महात्माका मिलना दुर्लभ है, मिल जाय तो फिर कल्याण दुर्लभ नहीं है!

रामायणमें आया है—

ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी॥

(मानस, उत्तर० ११७। १)

भगवान्‌का अंश अविनाशी, चेतन, अमल (दोषरहित) और सहज सुखराशि है। विचार करें, जो 'अविनाशी' हो, उसके लिये क्या करना पड़ता है? 'चेतन' के लिये क्या करना पड़ता है? 'अमल' के लिये क्या करना पड़ता है? और 'सहज सुखराशि' के लिये क्या करना पड़ता है? अपने लिये कुछ करना पड़ता ही नहीं! करना है केवल सेवा। हमारे पास जो सामग्री है, उसका सदुपयोग केवल संसारकी सेवा करनेमें है। सन्त-महात्माओंके द्वारा मात्र जीवोंकी स्वाभाविक सेवा होती है, करनी नहीं पड़ती। करना है सेवा, जानना है अपनेको और मानना है भगवान्‌को।

सत्संगमें रहनेवाले आदमी और तरहके हो जाते हैं! वे जब बाहर जाते हैं, तब उनको दुनिया और तरहकी दीखती है! मानो लू चल रही हो! सब तपता हुआ दीखता है! सत्संगमें आते हैं तो स्वाभाविक शान्ति दीखती है।

श्रोता—हम तो अपनी तरफसे भगवान्‌के शरण हो गये, पर भगवान् यदि हमको कह दें कि हाँ, हमने शरण ले लिया, तब तो हमें सन्तोष हो जाय, नहीं तो हमें यह लगता है कि पता नहीं हम शरण हुए कि नहीं हुए! उन्होंने शरण लिया कि नहीं लिया! इसमें हम क्या करें?

स्वामीजी—एक मार्मिक बात बतायें! आप शरण नहीं होते तो भी भगवान्‌ने सबको पहलेसे ही शरणमें ले रखा है! मैं सबसे पूछता हूँ कि आपने जानकर इस माँके पेटसे जन्म लिया है क्या? इस पितासे आपने जानकर जन्म लिया है क्या? इस कुटुम्बमें आप जानकर आये हैं क्या? अगर नहीं तो सिद्ध हुआ कि किसीने आपको शरणमें ले रखा है! भगवान्‌ने आपसे पूछा था, आपसे सम्मति ली थी कि कहाँ जन्म लेना है? उन्होंने अपनी तरफसे सबको शरणमें लिया हुआ है। माँ बच्चेको स्नान कराती है तो क्या सम्मति लेती है? अगर ले तो वह सम्मति देगा ही नहीं! बच्चा तो मूर्खतासे माँकी गोदीमें भी रोता है! अगर माँकी गोदीमें रोयेगा तो हँसेगा कहाँ?

***　　　***　　　***

श्रोता—आप कहते हैं कि मन-बुद्धिको अपना नहीं मानना है। परन्तु हम कोई-सा भी कार्य करते हैं तो वह मन-बुद्धिके द्वारा ही होता है और मन-बुद्धि साथमें रहते ही हैं। इसलिये मन-बुद्धिको तो अपना मानना ही पड़ेगा। उनको अपना कैसे न मानें?

स्वामीजी—आपकी बात ठीक है; परन्तु अपना कल्याण करना हो तो जड़ और चेतनका विभाग मानना चाहिये। मन-बुद्धि अपने नहीं हैं; क्योंकि ये प्रकृतिके कार्य हैं। हम भगवान्‌के अंश हैं और मन-बुद्धि प्रकृतिसे पैदा हुए हैं। मन-बुद्धिको काममें लेना मना नहीं है, प्रत्युत इनको अपना मानना

मना है। आप इस सत्संग-पण्डालको काममें लेते हैं तो यह अपना है क्या? बिछौना अपना है क्या? बत्ती अपनी है क्या? कमरेको अपना मानते हो क्या? इनको काममें लेनेकी मनाही नहीं है, अपना माननेकी मनाही है। अगर कल्याण चाहते हो तो जड़को अपना मत मानो। **जड़को अपना मानोगे तो कल्याण कैसे होगा? कल्याणमें बाधा लगी है तो जड़को अपना माननेसे ही बाधा लगी है। जड़को अपना माननेसे ही बन्धन है।** मन-बुद्धि अपने नहीं हैं, शरीर अपना नहीं है, इन्द्रियाँ अपनी नहीं हैं, प्राण अपने नहीं हैं, आयु अपनी नहीं है। ये सब प्रकृतिके हैं। अनन्त ब्रह्माण्डोंमें तिल-जितनी चीज भी अपनी नहीं है। अपने केवल भगवान् हैं।

श्रोता—आप कहते हैं कि जो साधन किया जाता है, वह असली नहीं होता तो ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग—इनमें कौन-सा ऐसा साधन है, जो स्वतः होता है? सभी तो करने ही पड़ते हैं!

स्वामीजी—करनेके बाद वह स्वतः होने लगता है। पहले नामजप करते हैं, फिर नामजप अपने-आप होने लगता है। नकलसे असल हो जाता है।

असली साधन है—भगवान्‌से प्रेम—***'पन्नगारि सुनु प्रेम सम भजन न दूसर आन'*** (मानस, अरण्य० १०में पाठभेद)। प्रेम स्वयंसे ही होता है।

***   ***   ***

श्रोता—जब सत्तामात्रमें स्थिति रहती है और कोई संकल्प पैदा नहीं होता, तब बहुत ही आनन्द रहता है। ऐसा आनन्द हर समय रहे, ऐसा कोई उपाय बताइये।

स्वामीजी—आप यह मान लो हर समय ऐसा ही है। वह आनन्द हर समय ही है। उसमें कोई फर्क पड़ता ही नहीं। इसमें गलती यह हुई कि आपने इसको कृतिसाध्य मान लिया। हमारे अभ्याससे हुआ है—यह मानना गलती है। वास्तवमें यह कृतिसाध्य नहीं है। यह स्वतःसिद्ध है। हमारी स्थिति स्वाभाविक वैसी है। यह हमारी बनायी हुई है—ऐसा मत मानो।

एक स्वाभाविक सत्ता है। उस सत्तामें 'मैं' नहीं है। उसमें हमारी स्थिति स्वाभाविक है, बनावटी नहीं है। बनावटी तो संसारकी स्थिति है। **मुक्ति होती नहीं है, मुक्ति तो है! प्रेम होता नहीं है, प्रेम तो है! जो पैदा होनेवाला होता है, वह नाशवान् होता है।**

श्रोता—कहा जाता है कि संसार 'है' के अन्तर्गत अनुभवमें आता है। 'है' की बात तो समझमें आती है, लेकिन यह समझ लेनेसे हमको क्या प्राप्ति हुई?

स्वामीजी—आप प्राप्तिकी इच्छा ही मत करो। प्राप्ति तो अप्राप्तकी होती है। 'है' का अनुभव होना नित्यप्राप्तकी प्राप्ति है, अप्राप्तकी प्राप्ति नहीं है। यह जो अप्राप्तको प्राप्त मान रखा है, इसको नहीं मानना है, बस।

गंगाजी बहती है तो उसमें कभी कीचड़ आ जाता है, कभी कूड़ा-करकट आ जाता है, कभी स्वच्छ जल आ जाता है, कभी मुर्दा बहता हुआ आ जाता है, पर गंगाजीके नीचे जो शिला है, वह वैसी-की-वैसी ही रहती है! उसमें कुछ फर्क पड़ता ही नहीं! ऐसे ही कितने ही विकार आ जायँ, 'है' में कभी फर्क पड़ता ही नहीं! **उस 'है' की प्राप्ति होती नहीं, प्राप्ति है! 'है' के सिवाय कुछ है ही नहीं, 'है' ही है!** यह जो हाथ दीखता है, यह दो नंबरमें दीखता है। एक नंबरमें प्रकाश दीखता है। प्रकाशके बिना हाथ दीखेगा ही नहीं। परन्तु आपकी दृष्टि हाथकी तरफ जाती है, प्रकाशकी तरफ जाती ही नहीं! इसी तरह सत्ता सबसे पहले है। उस सत्ताके अन्तर्गत ही सब दीखता है।

जो ज्योतियों का ज्योति है, सबसे प्रथम जो भासता।

अव्यय सनातन दिव्य दीपक, सर्व विश्व प्रकाशता॥

आप वस्तुको न देखकर 'है' को देखो, बस, इतनी ही बात है!

श्रोता—साधकका व्यवहार कैसा होना चाहिये?

स्वामीजी—बड़े प्रेमका, आदरका व्यवहार होना चाहिये। कोई भी आये, कैसा ही बर्ताव करे, पर हमारा प्रेमका बर्ताव हो। जो आये, सबसे पहले प्रेमसे भोजन पूछो, कुशल-मंगल पीछे पूछो—***'मिलता ही मनुहार, कुसलाई पूछे पछे'***। केवल कहनेसे ही दूसरेको सन्तोष होता है! यद्यपि यह पूछना मेरा काम नहीं है, पर मेरे पास कोई आये तो मैं भी भोजनके लिये पूछ लेता हूँ! यह बात आप सबमें होनी चाहिये। इस एक बातसे बहुत फायदा है! यह अपने देशकी रिवाज है। यह दूसरे देशोंमें नहीं है! एक विदेशी सज्जन धोरेपर (बीकानेर) आये तो उन्होंने वहाँका बासा (भोजनालय) देखकर बड़ा आश्चर्य किया! कोई आकर भोजन करे, पैसा है तो दे दे, नहीं तो कोई बात नहीं!

*** *** ***

श्रोता—आपने 'सत्यकी खोज' पुस्तकके आखिरमें लिखा है कि प्रेम साध्य है। जबतक प्रेमकी प्राप्ति नहीं होगी, तबतक यात्रा पूरी नहीं होगी। यह प्रेम कैसे प्राप्त हो?

स्वामीजी—केवल प्रेमकी प्राप्तिकी इच्छा करो। भगवान्‌की चीज केवल इच्छासे प्राप्त हो जाती है। एक बात बताता हूँ, सब ध्यान देकर सुनें। हरेकसे बात करो तो प्रेमपूर्वक करो। हरेकसे व्यवहार करो तो प्रेमका करो। उसका हित कैसे हो? उसका कल्याण कैसे हो? उसको आराम कैसे मिले? उसको सुख कैसे पहुँचे?—इस भावसे व्यवहार करो तो प्रेम हो जायगा। हरेक बातमें प्रेमका सम्पुट लगा दो। कुत्ते, गधे, सूअर, ऊँट आदिके साथ भी प्रेमका बर्ताव करो। घरवालोंके साथ और बाहरवालोंके साथ भी प्रेमका बर्ताव करो। सबके साथ प्रेमका बर्ताव करो, प्रेमसे बात करो, प्रेमसे बोलो तो प्रेम हो ही जायगा। यह प्रेमप्राप्तिका बहुत बढ़िया उपाय है।

वास्तवमें प्रेम सबको प्राप्त है। भगवान्‌का अंश होनेसे प्रेम सबमें है। उस प्रेमकी जगह आसक्ति आ गयी। आसक्ति छोड़ो तो प्रेम हो जायगा।

श्रोता—महाराज दशरथने कैकेयीसे बहुत प्रेम किया, पर अन्तमें उनको क्या मिला?

स्वामीजी—कैकेयी भगवान्‌की भक्त थी! भगवान्‌को वनमें जाना था तो उन्होंने कैकेयीसे कहा कि माँ, यह काम तू कर दे। कैकेयीने भगवान्‌का काम कर दिया! माँने वही काम किया, जो बेटा चाहता था। केवल भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये कैकेयीने अपने ऊपर कलंक लिया! नहीं तो उन्होंने चौदह वर्षका वनवास ही क्यों माँगा? उम्रभरका वनवास क्यों नहीं माँगा? क्या भरतजीको चौदह वर्ष ही राज्य करना था? जितने दिनोंमें काम पूरा हो सके, उतने दिनोंका वनवास माँगा। भगवान्‌का काम (राक्षसोंका विनाश) करनेके लिये कैकेयीने अपनेपर कलंक ले लिया। ऐसा कलंक लिया कि आपको 'कैकेयी' नामवाली स्त्री नहीं मिलेगी! कितनी शूरवीर थीं! ऐसी माँ नहीं मिलेगी! कैकेयी भगवान्‌को बहुत प्यारी थीं। भगवान् वनवाससे लौटे तो सबसे पहले कैकेयीसे मिले, पीछे कौसल्यासे मिले। कैकेयी एक नंबरकी माँ थी!

सलाह करनेमें, सलाह देनेमें कैकेयी एक नंबरकी थीं। कार्य करनेमें सुमित्रा एक नंबरकी थीं। सबके साथ स्नेह करनेमें कौसल्या एक नंबरकी थीं।

*** *** ***

परमात्माकी प्राप्ति करना अपने घर जाना है। हम परमात्माके अंश हैं। अत: जबतक हम परमात्माके घर नहीं जायँगे, तबतक हम मुसाफिर ही हैं। मैं ऐसा मानता हूँ कि यह बात आप सबकी समझमें आ ही गयी होगी! यह कोई मामूली बात नहीं है। **परमात्माको प्राप्त किये बिना कोई भी कहीं भी ठहर सकता ही नहीं!** भगवान्‌ने साफ कहा है—

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते॥

(गीता ८। १६)

'हे अर्जुन! ब्रह्मलोकतक सभी लोक पुनरावर्तीवाले हैं अर्थात् वहाँ जानेपर पुन: लौटकर संसारमें आना पड़ता है; परन्तु हे कौन्तेय! मुझे प्राप्त होनेपर पुनर्जन्म नहीं होता।'

इतनी बात समझमें आ जाय तो बहुत बात समझमें आयी है! इस बातका चेत होना चाहिये कि यह मुसाफिरखाना है। हमें यहाँ नहीं रहना है, अपनी जगह जाना है। इतना ज्ञान होना भी बहुत काम करनेवाला है! जबतक जीवको परमात्माकी प्राप्ति नहीं हो जाती, तबतक वह भटकता ही फिरता है, कहीं भी ठहरता नहीं। कहीं भी ठहरनेकी जगह नहीं है। कोई भी विश्रामकी जगह नहीं है। गोस्वामीजीने कहा है—***'पायो परम बिश्रामु'*** (मानस, उत्तर० १३० छं०)। परम विश्राम केवल परमात्मामें ही है। अन्य जगह विश्राम नहीं है। इतना ज्ञान होना भी बहुत ज्ञान है! यह मामूली ज्ञान नहीं है!

भगवान्‌की प्राप्तिके बिना मुफ्तमें दु:ख पा रहे हैं! भगवत्प्राप्ति बहुत सुगम-सरल है। शरीरका अभिमान छोड़ना कठिन मालूम देता है, अन्यथा भगवत्प्राप्ति बहुत सुगम है। हमारे सत्संगी भाई-बहनोंको तो एकदम अनुभव हो जाना चाहिये। **हमारे मनमें तो ऐसी बात आती है कि हमारा सत्संग करनेवालोंमें कमी नहीं रहनी चाहिये। छोटे-बड़े, बूढ़े-जवान, स्त्रियाँ-पुरुष सब-के-सब महात्मा हो जायँ, तत्त्वज्ञ हो जायँ, जीवन्मुक्त हो जायँ, परमात्मतत्त्वको प्राप्त हो जायँ!**

भगवत्प्राप्तिके बिना सब मुसाफिर हैं। कहीं भी ठहर नहीं सकते। मनुष्यजन्ममें भी बालक होता है, फिर जवान होता है, फिर बूढ़ा होता है, कहीं ठहरता नहीं। ठहर सकता ही नहीं। भगवान् कहते हैं—

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥

(गीता १५। ६)

'उस परमपदको न सूर्य, न चन्द्र और न अग्नि ही प्रकाशित कर सकती है और जिसको प्राप्त होकर जीव लौटकर संसारमें नहीं आते, वही मेरा परम धाम है।'

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम्।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥

(गीता ८। २१)

'उसीको अव्यक्त और अक्षर—ऐसा कहा गया है तथा उसीको परम गति कहा गया है और जिसको प्राप्त होनेपर जीव फिर लौटकर संसारमें नहीं आते, वह मेरा परम धाम है।'

आप सब-के-सब मुक्त हो सकते हो। यह तो अपने घरकी बात है! यह मुसाफिरी भूलसे है। हम केवल भगवान्‌के अंश हैं। बालक अपनी माँकी गोदीमें जाय तो क्या परिश्रम है! जैसे माँ हमारी है, ऐसे ही भगवान् हमारे हैं। भगवान् कहते हैं—**'पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः'** (गीता ९। १७) 'इस सम्पूर्ण जगत्‌का पिता, धाता, माता, पितामह मैं ही हूँ'। भगवान् मेरी माँ है—इस बातपर

सब भाई-बहनोंको स्वतः-स्वाभाविक आनन्द आना चाहिये, प्रेम आना चाहिये! जितने सुननेवाले हैं, पढ़नेवाले हैं, उन सबके भीतर यह भाव आना चाहिये कि भगवान् मेरी मीठी, प्यारी माँ हैं! भगवान्‌को याद करते हुए, उनका नाम लेते हुए आनन्द आना चाहिये! गोस्वामीजी कहते हैं—

जो मोहिं राम लागत मीठे।
तौ नवरस षटरस-रस अनरस ह्वै जाते सब सीठे॥

(विनयपत्रिका० १६९)

'यदि मुझे भगवान् राम ही मीठे लगे होते तो संसारके नवरस (शृंगार, हास्य, करुणा, वीर, रुद्र, भयानक, वीभत्स, अद्‌भुत और शान्त) एवं भोजनके छः रस (कड़ुआ, तीखा, मीठा, कसैला, खट्टा और नमकीन) नीरस तथा फीके पड़ जाते।'

रामजी अगर मीठे लगते तो सब संसार फीका हो जाता! जैसे, ऊखमेंसे कोई रस निकाल ले! मिठास तो भगवान्‌की ही है। अगर भगवान् मीठे लगने लगें तो सब काम ठीक हो जायगा; यह मुसाफिरी मिट जायगी।

*** *** ***

हमें अपनी मुसाफिरी मिटानी है और परमात्माके घर जाना है। इसमें लोगोंने कठिनता मान रखी है, पर वास्तवमें कोई कठिनता नहीं है। जैसे अपनी माँकी गोदीमें हरेक बालक बैठ सकता है, हरेक बालकका अधिकार है। ऐसे ही सब-के-सब परमात्माको प्राप्त हो सकते हैं, तत्त्वज्ञान प्राप्त कर सकते हैं, प्रेम प्राप्त कर सकते हैं। हम परमात्माके अंश हैं; अतः परमात्मप्राप्ति कोई नयी बात नहीं है। संसारमें जन्मना-मरना नयी बात है। संसारकी कामना ही परमात्मप्राप्तिमें बाधक है।

जो परमात्मतत्त्वको जान गये, वे अपने घर पहुँच गये। वास्तवमें वे ही घरमें रहनेवाले हैं, बाकी सब मुसाफिर हैं। घर पहुँचे बिना मुसाफिर कहीं भी टिकता नहीं। वह ब्रह्मलोकमें जाकर भी हरदम वहाँ नहीं रह सकता। मुसाफिरीमें सुख नहीं होता। कोई बड़ा सम्पत्तिशाली हो, तो भी मुसाफिरीमें पराधीनता रहती है। स्वाधीनतापूर्वक चीज नहीं मिलती। अपने घरके बिना सदा अधूरापन रहता है। इसलिये आपलोगोंसे यही विनती है कि अपने घर पहुँचनेकी चेष्टा करो। घर पहुँचनेपर जो आनन्द होता है, वह आनन्द मुसाफिरीमें नहीं है। मुसाफिरीमें तकलीफ-ही-तकलीफ है, पर घर पहुँचनेपर आनन्द-ही-आनन्द है। इसलिये घरपर पहुँचनेकी बड़ी जरूरत है। घरपर पहुँचनेपर कुछ भी करना, जानना और पाना बाकी नहीं रहता। ऐसा होनेपर ही मनुष्यजन्म सफल होता है।

परमात्माका घर सब जगह है। जो परमात्माको जान गये हैं, वे यहाँ बैठे हुए भी वास्तवमें अपने घरमें ही हैं। परन्तु जिन्होंने परमात्माको नहीं जाना, वे सब मुसाफिर हैं।

*** *** ***

परमात्मप्राप्तिके लिये एक दृष्टान्त है। जैसे, एक महलके ऊपर मन्दिर है। उस मन्दिरमें जाना है। वहाँ जानेके दो मार्ग हैं। एक मार्ग सड़कका है, जो घूमते-घूमते वहाँतक पहुँचता है। दूसरा मार्ग जंगलका है, जिसमें टहनियाँ-पत्थर पकड़ते-पकड़ते सीधे ऊपर पहुँच सकते हैं। परन्तु सीधे जानेवाले आदमी कम होते हैं, ज्यादा सड़कवाले ही होते हैं। आपको पहले ही बता दिया है कि 'एक परमात्मतत्त्व है। उसके सिवाय कुछ है नहीं, कुछ हुआ नहीं, कुछ होगा नहीं, कुछ हो सकता नहीं'—यहाँ आपको पहुँचना है। यहाँ पहुँचनेके लिये शास्त्रमें श्रवण-मनन-निदिध्यासन आदि अनेक मार्ग बताये हैं। परन्तु जिनको सीधा ही वहाँ पहुँचना है, वे पहलेसे ही विचार कर लेते हैं कि एक परमात्मतत्त्व है, उसके

सिवाय कोई सत्ता है ही नहीं। इस प्रकार उस निर्विकार, निर्लेप, निष्क्रिय सत्ताका अनुभव कर लो, यह एकदम सीधी-सरल बात है!

श्रोता—हमारा जो वास्तविक घर भगवान्‌का धाम है, वह मरनेके बाद मिलेगा या पहले जीते-जी भी मिल सकता है?

स्वामीजी—जीते-जी भी मिल सकता है। कारण कि भगवान् सब जगह हैं। 'है' (सत्ता)-रूपसे परमात्मा ही हैं। संसार तो 'नहीं' है। **उस 'है' में हरदम स्थित रहे तो जीता हुआ भी परमात्मामें स्थित है।** सब मुसाफिरी मिट जायगी।

*** *** ***

यह विचार करना चाहिये कि वास्तविक तत्त्व क्या है? एक परमात्मा ही वास्तविक, आखिरी तत्त्व है। वह सत्ता एक ही है। एक ही सत्ता विलक्षण रूपसे तरह-तरहसे दीखती है। उस तत्त्वका वर्णन नहीं हो सकता। उस तत्त्वकी प्राप्ति करना मनुष्यमात्रका असली कर्तव्य है। उसकी प्राप्ति होनेपर सदाके लिये दु:ख मिट जाता है, सन्ताप मिट जाता है, जन्म-मरण मिट जाता है और पूर्ण आनन्द हो जाता है। उस तत्त्वको छोड़कर सांसारिक विषय-भोगोंमें लगना पशुबुद्धि है, मनुष्यबुद्धि नहीं है। मनुष्यबुद्धि तत्त्वको प्राप्त करना है। श्रीमद्भागवतके अन्तमें शुकदेवजी महाराज कहते हैं—

त्वं तु राजन् मरिष्येति पशुबुद्धिमिमां जहि।
न जातः प्रागभूतोऽद्य देहवत्त्वं न नङ्क्ष्यसि॥

(श्रीमद्भा० १२। ५। २)

'हे राजन्! अब तुम यह पशुबुद्धि छोड़ दो कि मैं मर जाऊँगा। जैसे शरीर पहले नहीं था, पीछे पैदा हुआ और फिर मर जायगा, ऐसे तुम पहले नहीं थे, पीछे पैदा हुए और फिर मर जाओगे—यह बात नहीं है।'

स्वयं कभी मरता नहीं। मैं मर जाऊँगा—यह पशुबुद्धि है। अविनाशी जीव कैसे मर जायगा? ***'ईस्वर अंस जीव अबिनासी'***। अविनाशीका विनाश मानना पशुबुद्धि है। ऐसी बुद्धिवाला मनुष्य नहीं है। स्वयं अमल है, शुद्ध है। मलका आपने आरोप किया है। स्वयंतक पाप पहुँचते ही नहीं। न पुण्य पहुँचता है, न पाप पहुँचता है। आप शुद्ध-बुद्ध-मुक्त हैं। आपमें बन्धन है ही नहीं। बन्धन आपका माना हुआ है। यह मान्यता मिटानी है।

सत्संग करनेसे, नामजप करनेसे, गंगास्नान करनेसे, उपवास करनेसे पाप नहीं रहते। ज्ञात-अज्ञात सब पाप नष्ट हो जाते हैं। फिर भी आप अपनेमें पाप मानते हैं तो पापको आप पकड़ते हैं। गंगास्नान करके भी आप अपनेको निर्मल, पापरहित नहीं मानते। जबर्दस्ती पापोंको रखते हैं! जैसे, भैंसको मच्छर काटते हैं तो वह डुबकी लगाकर पानीमें चली जाती है। परन्तु पानीसे बाहर निकलते ही मच्छर वापस चिपक जाते हैं। ऐसे ही पाप आपसे दूर हो जाते हैं, पर 'हमारे पाप नष्ट नहीं हुए'—ऐसा मानते ही पाप वापस चिपक जाते हैं!

*** *** ***

परमात्मा स्वत:-स्वाभाविक सबमें परिपूर्ण हैं। अत: सबमें परमात्मा है—यह बात अपनेमें स्वाभाविक होनी चाहिये। इसमें न चिन्तन करना है, न जोर लगाना है। चिन्तन करना, जोर लगाना भी एक साधन है, पर वास्तवमें यह ऊँची बात नहीं है। परमात्मा तो सबमें स्वाभाविक हैं ही। इसमें क्या चिन्तन करें? क्या विचार करें? चिन्तन-विचार करें या न करें, परमात्मामें कोई फर्क नहीं पड़ता। एक परमात्मा

सबमें परिपूर्ण है—यह स्वाभाविक वृत्ति होनी चाहिये। जैसे यह संसार है, यह गंगाजीका किनारा है, यह उत्तराखण्ड है—यह वृत्ति स्वाभाविक रहती है, चिन्तन नहीं करना पड़ता, ऐसे ही परमात्माकी स्वाभाविक वृत्ति रहनी चाहिये। संसार तो स्वाभाविक रहनेवाला नहीं है, पर परमात्मा सदा स्वाभाविक रहनेवाले हैं।

साधन वही असली होता है, जो स्वाभाविक होता है। जो किया जाता है, वह नकली होता है। चिन्तन करनेसे नकली साधन होता है। जैसे, अपनी जातिको याद करनेकी जरूरत नहीं होती। ब्राह्मणको याद नहीं करना पड़ता कि मैं ब्राह्मण हूँ। ऐसे ही परमात्मा सबमें परिपूर्ण हैं—ऐसी स्वाभाविक वृत्ति रहनी चाहिये। एक ही परमात्मा अनेक रूपसे प्रकट हुए हैं, और अनेक रूपसे वे एक ही हैं। जो क्रिया हो रही है, वह भगवान्‌की लीला है। वे एक ही अनेक रूप धारण करके लीला कर रहे हैं। परन्तु यह मध्यम श्रेणीकी बात है। वास्तवमें एक परमात्माकी सत्ता ही है। उस सत्ताके सिवाय कुछ हुआ ही नहीं, है नहीं, होगा ही नहीं, हो सकता ही नहीं। यह बात बिना चिन्तन किये स्वाभाविक ही साधकके हृदयमें बैठ जानी चाहिये। याद करनेकी जरूरत ही न रहे। ऐसा हो जाय तो बड़ा भारी साधन हो गया! संसार तो केवल कहनेके लिये है, वास्तवमें परमात्मा ही हैं। ***हैं तो परमात्मा, पर कहते हैं संसार।***

*** *** ***

भगवान्‌ने तो सबको, मात्र जीवोंको अपने शरण ले रखा है। इसलिये वे किसीसे पूछते ही नहीं कि तुम्हारेको कहाँ जन्म दें, किस माँके यहाँ जन्म दें। अब हमें केवल अपनी तरफसे उनके शरण होना है। यह सबसे श्रेष्ठ साधन है। पूरी गीता कहकर अन्तमें भगवान्‌ने 'अत्यन्त गोपनीय' अपना 'परम वचन' कहा—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(गीता १८। ६६)

'सम्पूर्ण धर्मोंका आश्रय छोड़कर तू केवल मेरी शरणमें आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा, चिन्ता मत कर।'

भगवान् कहते हैं कि तुम्हारा काम इतना ही है कि मेरे शरण हो जाओ, बाकी सब काम मैं करूँगा। सब पापोंसे मुक्त मैं करूँगा, तुम्हारेको मुक्ति करनी नहीं पड़ेगी। जैसे, छोटे बालकको स्नान कराना, कपड़े पहनाना, मल-मूत्र साफ करना आदि सब काम माँ करती है। बालकको कुछ करना नहीं पड़ता। बालकका सब काम करके माँ प्रसन्न होती है। माँको आनन्द आता है। गाय खुद ही बछड़ेको चाटकर साफ करती है तो इससे गायको आनन्द आता है। जो गाय बछड़ेको चाटकर साफ करती है, उस गायका दूध बढ़ता है! अगर बछड़ेको धोकर, साफ कर दिया जाय तो गायका दूध कम होता है। अगर घासमें गोबर-गोमूत्रकी गन्ध हो तो गाय घास नहीं खाती। पर वही गोबर-गोमूत्र बछड़ेमें लगा हुआ है, पर उसको चाटकर साफ करनेमें गायको आनन्द आता है! ऐसे ही भगवान्‌को भी पापोंसे मुक्त करनेमें आनन्द आता है!

भगवान् कहते हैं कि तुम मेरे शरण हो जाओ तो सब काम मैं करूँगा, तुम चिन्ता ही मत करो। ऐसी ही बात गीताप्रेसके संस्थापक सेठजी (श्रीजयदयालजी गोयन्दका)-की भी सुनी है। उन्होंने कहा कि तुम व्यक्तिको सत्संगमें लाकर बैठा दो। इतना काम तुम कर दो, बाकी सब काम हम करेंगे!

ऐसे ही आप भगवान्‌के चरणोंके शरण हो जाओ, बस, फिर सब काम भगवान् करेंगे! कितनी बढ़िया बात है! हमारे लिये कितने कामकी बात है! भगवान्‌ने तो शरण ले रखा है, अब केवल अपनी तरफसे शरण होना है। करना कुछ नहीं है, केवल भगवान्‌की हाँ-में-हाँ मिलाना है कि जो भगवान् करें, वह ठीक!

शरण नहीं होकर क्या कर लोगे? कुछ कर नहीं सकते। अगर कर सकते तो अबतक अपना कल्याण कर लेते! शरण होनेमें सीधी सरल बात है कि 'मैं भगवान्‌का हूँ'—यह भीतर भाव हो जाय। जो भगवान्‌के शरण हो जाता है, उसको कोई चिन्ता नहीं होती, कोई शोक नहीं होता, उसके लिये करना बाकी नहीं रहता, उसके ऊपर कोई जिम्मेवारी नहीं रहती।

***　　　　***　　　　***

जैसा कि हमने समझ रखा है, जन्म लिया और मर गये—इतनी ही अपनी उम्र नहीं है। अपनी उम्र बहुत लम्बी है। जैसे कोई बीचमें किसी गाँवमें ठहर जाय और कुछ दिन रहकर वहाँसे चला जाय, ऐसे ही हम थोड़े-से समयके लिये मनुष्यशरीरमें आये हैं। हमारी उम्र इतनी ही नहीं है, बहुत लम्बी है। हम चौरासी लाख योनियोंमें जा चुके हैं, और फिर कितनी योनियोंमें जायँगे, इसका पता नहीं है। अगर मुक्ति, कल्याण हो जाय तो फिर सदा परमात्माके साथ रहना है। तात्पर्य है कि हमें सदा रहना है। सब लोकोंमें घूमनेपर भी हमारी उम्र समाप्त नहीं होती। हमारा जीवन सदाके लिये है। इसलिये यह सोचना चाहिये कि हम सदाके लिये सुखी हो जायँ। कभी कोई दु:ख न आये।

दो विभाग हैं—नाशवान् और अविनाशी। ब्रह्मलोकतकके सभी लोक नाशवान् विभागके हैं। हम अविनाशी विभागके हैं, नाशवान् विभागके नहीं हैं—***'ईस्वर अंस जीव अबिनासी'***। हम परमात्माके प्यारे पुत्र हैं, मामूली नहीं हैं। अपनी सन्तान हरेकको प्यारी लगती है। हम सब भगवान्‌की सन्तान होनेसे भगवान्‌को प्यारे हैं—***'सब मम प्रिय सब मम उपजाए'*** (मानस, उत्तर० ८६। २)। परन्तु इस तरफ आपका ख्याल नहीं है। आपका ख्याल नाशवान् पदार्थोंकी तरफ है। यह बड़ी भारी गलती है! ये सब नष्ट हो जायँगे, पर हम सदा रहेंगे। **महाप्रलय होनेपर ब्रह्माजी भी शान्त हो जाते हैं, पर हम रहते हैं!** यह शरीर तो कपड़ेकी तरह है। कपड़ा पहननेकी तरह हमने कई शरीर धारण किये हैं और छोड़े हैं। इसलिये हमारी दीर्घदृष्टि होनी चाहिये। तुच्छदृष्टिसे बड़ा भारी नुकसान हो रहा है। हम सदाके लिये सुखी हो जायँ—ऐसी दृष्टि रखनी चाहिये। धन पैदा कर लिया, मान-बड़ाई हो गयी, आदर-सत्कार हो गया, लोगोंमें वाह-वाह हो गयी तो यह हमारी उम्रके सामने बहुत तुच्छ है। इसलिये सभी भाई-बहनोंको ध्यानमें रखना चाहिये कि हमारी उम्र कितनी बड़ी है! इधर ध्यान देनेकी खास आवश्यकता है।

चौदह भुवन (लोक) हैं। भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक और सत्यलोक (ब्रह्मलोक)—ये सात ऊपरके लोक हैं, और अतल, वितल, सुतल, तलातल (गभिस्तमल), महातल, रसातल और पाताल—ये सात नीचेके लोक हैं। यह चौदह लोकोंका एक ब्रह्माण्ड है। ऐसे अनन्त ब्रह्माण्ड हैं। उन ब्रह्माण्डोंमें अनन्त शक्तियाँ हैं, अनन्त वस्तुएँ हैं, जिनका कोई पारावार नहीं है। आपकी गिनती समाप्त हो जायगी, पर ब्रह्माण्डोंका अन्त नहीं आयेगा! भगवान्‌के एक-एक रोममें ऐसे करोड़ों ब्रह्माण्ड हैं—***'रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड'*** (मानस, बाल० २०१)। उन ब्रह्माण्डोंके अलग-अलग ब्रह्मा-विष्णु-महेश भी अनन्त हैं। सूर्य और चन्द्रमा भी अनन्त हैं। **ये सब ब्रह्माण्ड महाप्रलयमें लीन हो जायँगे; परन्तु इन सबके लीन होनेपर भी आप स्वयं रहेंगे! कारण कि ब्रह्माण्ड विनाशी हैं, आप अविनाशी हैं।**

यह लोक मृत्युलोक है। यहाँ सब मरने-ही-मरनेवाले इकट्ठे हुए हैं। परन्तु मनुष्यशरीर इस मृत्युलोकसे निकलनेका दरवाजा है। भगवान्‌को याद करनेवाले, भगवान्‌में लगनेवाले मौतमेंसे निकल जाते हैं।

नवग्रह चौंसठ जोगिणी, बावन वीर प्रजंत।
काल भक्ष सबको करै, हरि शरणै डरपंत॥

(करुणासागर ६४)

आप भगवान्‌के चरणोंके शरण हो जाओ तो यह काल ही समाप्त हो जायगा!

***　　***　　***

श्रोता—भगवान्‌का भक्त बननेके लिये और उनका कृपापात्र होनेके लिये सबसे सरल उपाय क्या है?

स्वामीजी—मैं भगवान्‌का हूँ—यह उपाय है। जैसे किसी गुरुके शिष्य बन गये कि मैं उनका शिष्य हूँ, ऐसे ही स्वीकार कर लो कि मैं भगवान्‌का हूँ और भगवान् मेरे हैं। भगवान्‌के सिवाय मैं और किसीका नहीं हूँ, कोई और मेरा नहीं है। वास्तवमें भगवान्‌के सिवाय कोई चीज अपनी है ही नहीं। कारण कि सब चीजें मिलने और बिछुड़नेवाली हैं। जो चीज मिलती है और बिछुड़ जाती है, वह अपनी नहीं होती। भगवान् सदासे मिले हुए ही हैं और कभी बिछुड़ते ही नहीं। **मैं भगवान्‌का हूँ और भगवान् मेरे हैं—ऐसा मान लो तो निहाल हो जाओगे, मौज हो जायगी, आनन्द हो जायगा!**

शरीर-मन-बुद्धिको भी अपना नहीं मानना है। न स्थूलशरीर अपना है, न सूक्ष्मशरीर अपना है, न कारणशरीर अपना है। **केवल भगवान् अपने हैं—*'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई'*। यह सबसे श्रेष्ठ, सार बात है। इससे सब काम हो जायगा! मुक्ति भी हो जायगी, प्रेम भी हो जायगा, वैराग्य भी हो जायगा, त्याग भी हो जायगा। कोई काम बाकी नहीं रहेगा!**

बालक कहता है कि माँ मेरी है। क्यों मेरी है—यह शंका उसको होती ही नहीं! ऐसे ही नि:शंक होकर मान लो कि भगवान् मेरे हैं।

***　　***　　***

एक बातपर आप ध्यान दो। एक शरीर है और एक आप हो। दोनों एक नहीं हैं, प्रत्युत दो हैं। शरीर प्रकृतिका है और आप स्वयं ईश्वरके बेटे हो। स्थूल, सूक्ष्म और कारण-शरीर तथा इनसे होनेवाली क्रिया, चिन्तन, भजन, ध्यान, जप, स्थिरता आदि सब शरीरकी है। स्थूलशरीरकी क्रिया, सूक्ष्मशरीरका चिन्तन और कारणशरीरकी स्थिरता व समाधि—यह सब प्रकृतिका है। आप स्वयं परमात्माके अंश हो। इस प्रकार परमात्माका अंश (चेतन) और प्रकृति—इन दोनोंका अलग-अलग विभाग जान लो तो इतनेमें ही काम पूरा हो जायगा! जीवन्मुक्ति हो जायगी! बहुत सीधी-सरल बात है। मुक्ति होती नहीं है, वह तो है। कृपा करके इस बातको आप स्वीकार कर लो। मैं शरीर नहीं हूँ—यह स्वीकार कर लो तो मुक्ति हो गयी! तत्त्वज्ञान हो गया! शरीरको अपने साथमें मान लिया तो बन्धन हो गया। यह बात मैं कई बार कह चुका हूँ कि जो मिलता है और छूट जाता है, वह अपना नहीं होता। एकान्तमें बैठकर इस बातको दृढ़ कर लो कि शरीर मिला है और छूट जायगा। अत: मैं शरीर नहीं हूँ और शरीर मेरा नहीं है। हम चले जायँगे, शरीर यहीं पड़ा रहेगा। **'शरीर मैं नहीं हूँ' तो मुक्ति हो गयी और 'शरीर मैं हूँ' तो बन्धन हो गया, इतनी ही बात है!**

***　　***　　***

श्रोता—हमारी उपासना सिद्ध हुई कि नहीं हुई—यह हमको कैसे मालूम पड़े?

स्वामीजी—आपके बिना स्मरण किये स्वतः स्मरण हो, और उसमें मन स्वाभाविक लग जाय, हटानेसे भी हटे नहीं, तब समझो कि उपासना आपके हाथ लग गयी। जबतक ऐसा नहीं हो, तबतक साधन हाथ नहीं लगा है। जबतक उपासना करनी पड़ती है, तबतक उपासना सिद्ध नहीं हुई। जब असली उपासना शुरू होगी, तब वह करनी नहीं पड़ेगी, प्रत्युत स्वतः होगी। उसमें स्वतः-स्वाभाविक मन लगेगा। उसके बिना रहा नहीं जायगा। संसारकी क्रियाओंमें, व्यक्तियोंमें, पदार्थोंमें आसक्ति नहीं होगी, खिंचाव नहीं होगा। साधकको अपनी स्थिति शरीरमें न दीखकर परमात्मामें दीखेगी। अपना शरीरका आश्रय नहीं दीखेगा।

साधनकी तीन अवस्थाएँ होती हैं—साधन 'करते' हैं, साधन 'होता' है, और साधन 'है'। तीसरी अवस्थामें बिना कुछ किये आठों पहर स्वतः भगवान्‌में स्थिति रहती है। मुख्य बात यह है कि साधन अपने-आप होना चाहिये।

श्रोता—'**वासुदेवः सर्वम्**' के सिद्धान्तके अनुसार मैंने स्वीकार कर लिया कि सब कुछ भगवान् हैं, फिर भी सन्तोष नहीं होता! इसका क्या कारण है?

स्वामीजी—सन्तोष करना नहीं चाहिये। सन्तोष करनेसे गलती होती है। वास्तवमें सन्तोष भीतरमें अपने-आप होता है।

प्रेममें ऐसा मालूम नहीं होता कि हमारा प्रेम है। हमारा प्रेम नहीं है—ऐसा मालूम होता है। ज्यों प्रेम होता है, त्यों उसमें कमी मालूम देती है। जैसे धनी आदमी लखपति-करोड़पति हो जाता है, फिर भी धन कमानेके तरह-तरहके उपाय सोचता रहता है। इस तरह प्रेमकी प्राप्ति होनेपर भी सन्तोष नहीं होता, प्रत्युत ऐसा मालूम होता है कि प्रेम कम है। कारण कि प्रेम अनन्त है, प्रतिक्षण वर्धमान है।

प्रेममें दो अवस्थाएँ मुख्य होती हैं। कभी तो प्रेमीको भगवान्-ही-भगवान् दीखते हैं और वह अपने-आपको भूल जाता है। कभी अपनी स्थिति दीखती है तो अपनेमें कमी मालूम देती है। इस तरह भगवान्‌में प्रतिक्षण वर्धमान प्रेम होता है। कमी मालूम दिये बिना प्रेम प्रतिक्षण वर्धमान कैसे होगा? राधाजीमें प्रतिक्षण वर्धमान प्रेम है, पर उनको मालूम होता है कि मेरेमें प्रेम है ही नहीं! वास्तवमें प्रेम अनिर्वचनीय है, इसका वर्णन नहीं कर सकते।

सब परमात्मा ही हैं—इसका अनुभव होनेपर मैं-तू-यह-वह चारों मिट जाते हैं। एक परमात्माके सिवाय दूसरी सत्ता ही नहीं दीखती। स्वतः एक आनन्द रहता है।

श्रोता—भगवान्‌के प्रति तो मोह होना भी ठीक है, पर महात्माके प्रति मोह होना ठीक है या नहीं?

स्वामीजी—ठीक नहीं है।

श्रोता—महात्मा और भगवान्‌में तो कोई अन्तर नहीं होता, फिर दो बातें क्यों?

स्वामीजी—भगवान्‌का तो शरीर भी दिव्य होता है, पर महात्माका शरीर दिव्य नहीं होता। महात्माका शरीर कर्मजन्य होता है। उनकी वाणी दिव्य होती है।

*** *** ***

हम जिसके अंश हैं, उस ईश्वरमें प्रेम हो जाय तो समझो कि हम अपने घर आ गये! अपने घर आनेपर कोई चिन्ता नहीं, मुसाफिरीमें चिन्ता है। जबतक घर नहीं आये, तबतक सब मुसाफिर

हैं। मुसाफिरीमें तो राजाको भी शान्ति नहीं मिलती—***'परदेस कलेस नरेसन को'***। घर आनेपर शान्ति मिलती है, भले ही छप्पर हो! इसलिये हमें अपने घर पहुँचना है, मुसाफिर नहीं रहना है। रामजीका जो घर है, पिताजीका जो घर है, वही अपना घर है।

सभी जीव परमात्माके अंश हैं। अतः सभी जीवोंका घर एक ही है। मात्र जीव एक ही परमात्माके घरके हैं। सभी जीव परस्पर बहन-भाई हैं। भले ही पशु हो, पक्षी हो, साँप हो, बिच्छू हो, सब बहन-भाई हैं! सभी एक घरके हैं। इसलिये सभी अपने घर चलो। हम भगवान्‌के हैं, भगवान् हमारे हैं—ऐसा मानकर आप यहाँ बैठे-बैठे ही भगवान्‌के घर आ जाओ! भगवान्‌के घरमें आनन्द-ही-आनन्द है। सारा दुःख मुसाफिरीमें है।

भगवान्‌का घर बहुत बड़ा है। सब-के-सब वहाँ चले जायँ तो भी वह भरता नहीं। वास्तवमें आप सभी भगवान्‌के घरमें ही हैं, पर प्रकृतिजन्य गणोंके अर्थात् संसारके सम्बन्धके कारण मुसाफिर हो गये हैं। भाइयो! आपने मुसाफिरी बहुत कर ली, अब मुसाफिरी छोड़ो और अपने घर चलो! सब मिलकर अपने पिताके घर चलो!

*** *** ***

श्रोता—सत्त्व, रज और तम—इन तीनों गुणोंसे रहित कैसे हों?

स्वामीजी—वास्तवमें आप तीनों गुणोंसे रहित हो, रहित होना नहीं है। तीनों गुण प्रकृतिके हैं। आप प्रकृतिसे अलग हो। आप परमात्माके अंश हो। प्रकृतिके साथ सम्बन्ध आपने जोड़ा है। गीता कहती है—

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः ।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते॥

(गीता १३। ३१)

'हे कुन्तीनन्दन! यह (पुरुष स्वयं) अनादि होनेसे और गुणोंसे रहित होनेसे अविनाशी परमात्म-स्वरूप ही है। यह शरीरमें रहता हुआ भी न करता है और न लिप्त होता है।'

आपका स्वरूप शरीरमें स्थित होते हुए भी कर्तृत्व-भोक्तृत्वसे रहित है। कृपा करके यह स्वीकार कर लो कि हम तीनों गुणोंसे अतीत हैं। आप कर्ता नहीं हो, प्रत्युत अपनेको कर्ता मान लेते हो—'**कर्ताहमिति मन्यते**' (गीता ३। २७)। आप प्रकृतिजन्य गुणोंसे स्वतः-स्वाभाविक अतीत हो। वास्तवमें आप जैसे हो, वैसा ही अनुभव करना है। आप संसारसे बिल्कुल अलग हो और परमात्माके साथ एक हो। शरीर तथा संसार एक जातिके हैं, और आप तथा परमात्मा एक जातिके हैं। आप स्वाभाविक ही ***'चेतन अमल सहज सुख रासी'*** हो। आप मान लो कि हम ऐसे ही हैं। आप चौरासी लाख योनियोंमें जाते हैं, पर किसीमें भी फँसते नहीं। वास्तवमें आप गुणातीत हैं। आपकी ताकत नहीं कि गुणोंके साथ रह जायँ, और गुणोंकी ताकत नहीं कि आपको बाँध लें! आप ही गुणोंको पकड़ लेते हैं।

श्रोता—आप कहते हैं कि हम गुणातीत हैं, पर इसका अनुभव नहीं होता है! इसका क्या कारण है, और इसका कैसे अनुभव हो?

स्वामीजी—खास बड़ी भारी बाधा यही है कि आप संसारके सम्बन्धसे सुख चाहते हो। संसारका सुख सम्बन्धजन्य है, वह आपका खुदका सुख नहीं है। सम्बन्धजन्य सुख सम्पूर्ण दुःखोंका कारण है। गीता कहती है—

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।

आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥

(गीता ५। २२)

'हे कुन्तीनन्दन! जो इन्द्रियों और विषयोंके संयोगसे पैदा होनेवाले भोग (सुख) हैं, वे आदि-अन्तवाले और दुःखके ही कारण हैं। अतः विवेकशील मनुष्य उनमें रमण नहीं करता।'

आप संयोगजन्य सुखमें रमण करते हो, यही बाधा है। आपकी वृत्ति संयोगजन्य सुखमें लग गयी, इस कारण अपने गुणातीत स्वरूपका अनुभव नहीं होता। इसको ठीक करना चाहो तो दूसरोंकी सेवा करो। अपनी पूरी शक्ति दूसरोंका दुःख दूर करनेमें लगाओ। आप अपने सुखभोगमें शक्ति लगाओगे तो ठीक नहीं होगा, और ज्यादा फँसोगे।

सेवाके विषयमें एक बड़ी सुगम बात है। केवल अपना भाव बना लो कि किसीको दुःख न हो। इसमें एक कौड़ी भी खर्चा नहीं है, कोई मेहनत नहीं है! दूसरेको दुःख न हो, सब सुखी हो जायँ—इस भावका बड़ा भारी माहात्म्य है।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

शक्ति भले ही कम हो, पर भाव पूरा होना चाहिये। दो बातें हैं—दुःखीको देखकर करुणा हो जाय और सुखीको देखकर प्रसन्नता हो जाय। इसमें आपका क्या खर्चा लगा? दूसरेका दुःख दूर करनेमें खर्चा भी होता है, परिश्रम भी होता है, पर भाव होनेमें क्या परिश्रम! भीतरमें भाव हो तो परिश्रम भी मालूम नहीं देता। जैसे, माँ अपने बालकका पालन करती है तो परिश्रम होनेपर भी भीतरमें आनन्द रहता है, दुःख नहीं होता।

बाहरी सुखकी चाहना रखनेसे आपके भीतरका सुख रुक गया है। बाहरके सुखकी चाहना छोड़ दो तो भीतरसे सुख उपजेगा। वह सुख आपको निहाल कर देगा! उससे केवल आपको ही नहीं, दुनियाको लाभ होगा!

*** *** ***

परमात्माका अंश होनेके कारण हम परमात्माके साथ हैं, शरीरके साथ नहीं हैं। शरीर जड़ और प्रकृतिका कार्य है। हम परमात्माके पासमें रहनेवाले हैं, शरीरमें रहनेवाले नहीं हैं। शरीर कभी निष्क्रिय रहता ही नहीं और स्वरूपमें कभी क्रिया होती ही नहीं। काल भी शरीरको खाता है। स्वरूपको काल नहीं खा सकता, उल्टे स्वरूप कालको खा जाता है! **आप इस एक बातको मान लें कि हम शरीरके साथ रहनेवाले नहीं हैं तो आप जीवन्मुक्त हो जायँगे! और इस बातको मान लें कि हम परमात्माके साथ रहनेवाले हैं तो आप भक्त हो जायँगे!**

श्रोता—कभी आप कहते हैं कि जड़-चेतनका विभाग बहुत जरूरी है, और कभी आप कहते हैं कि सब कुछ भगवान् ही हैं अर्थात् जड़-चेतनका विभाग जरूरी नहीं है। समझमें नहीं आता कि क्या करें?

स्वामीजी—तत्त्वसे एक ही बात है, केवल कहनेमें फर्क है। वास्तवमें 'सब कुछ भगवान् ही हैं'—यह बढ़िया बात है। जड़-चेतनको अलग-अलग मानना साधन है और सबको भगवान् मानना साध्य है। जड़-चेतनका विवेक करके फिर जड़को छोड़ दे। 'सब कुछ भगवान् ही हैं'—इसमें जड़ है ही नहीं, होगा ही नहीं, हो सकता ही नहीं। सत्ता एक ही होती है, दो हो सकती ही नहीं।

*** *** ***

परमात्माका अंश जीव ***'अबिनासी, चेतन, अमल, सहज सुख रासी'*** है। उसमें कुछ कमी है ही नहीं। विचार करें, 'अविनाशी' के लिये क्या करना पड़ता है? 'चेतन' के लिये क्या करना पड़ता है? 'अमल' के लिये क्या करना पड़ता है? 'सुखराशि' के लिये क्या करना पड़ता है? अपने लिये करना कुछ है ही नहीं। तो फिर करना क्या है? करना है सेवा। कोई भूखा है और हमारे पास अन्न है तो उसको भोजन करा देना। कोई प्यासा है और हमारे पास जल है तो उसको जल पिला देना। किसीके पास कपड़ा नहीं है और अपने पास कपड़ा है तो उसको कपड़ा दे देना। अपने पास चीज नहीं है तो यह लागू ही नहीं होता। मालपर जगात (टैक्स) लगती है। माल ही नहीं तो जगात किस बातकी? कुछ भी नहीं कर सको तो दुःखियोंको देखकर करुणा आ जाय और सुखियोंको देखकर प्रसन्नता आ जाय।

श्रोता—यदि जड़ अलग है और चेतन अलग है तो जब जड़को मार पड़ती है, तब चेतन क्यों रोता है?

स्वामीजी—जड़को अपना माननेसे रोता है। जैसे, जिस मकानको अपना मानते हैं, उसको कोई छीन ले तो रोना पड़ता है। मकानपर कोई कोयलेकी लकीर भी खींच दे तो ऐसा लगता है कि कलेजेमें लकीर खींच दी हो! इस अपनेपनको छोड़ना है। हम भगवान्‌के अंश हैं और जड़ प्रकृतिका कार्य है। भगवान्‌के अंशका जड़से क्या मतलब?

***　　　　***　　　　***

श्रोता—क्या कारण है कि ॐकार शब्दका जप केवल साधु-संन्यासी ही कर सकते हैं, गृहस्थी नहीं?

स्वामीजी—आप मूल बात समझो। अगर गृहस्थी चाहते हैं कि हमें ओंकारके जपका अधिकार मिलना चाहिये, स्त्रियाँ चाहती हैं कि हमें अधिकार मिलना चाहिये तो अधिकार चाहनेवाला नरकोंमें जाता है! वे अपना अधिकार चाहते हैं, अपना कल्याण नहीं चाहते। केवल अपना अभिमान बढ़ाना चाहते हैं, जिससे हमारा पतन हो जाय, हम नरकोंमें चले जायँ! अधिकार मिलनेसे केवल अभिमान बढ़ेगा, और कुछ नहीं। अधिकार नहीं मिलनेसे भीतरमें यह भाव आना चाहिये कि अच्छा हुआ, आफत छूटी! 'राम-राम' का जप करो तो यह ओंकारसे कम नहीं है। ओंकारके जपका जो फल होगा, वही फल राम-रामके जपसे हो जायगा।

श्रोता—नरकोंमें क्यों जायगा?

स्वामीजी—शास्त्रनिषिद्ध काम करनेसे नरकोंमें नहीं जायगा तो और कहाँ जायगा?

श्रोता—हनमान्‌जीको देवता मानना चाहिये या भगवान्?

स्वामीजी—उनको भगवान्‌का भक्त मानना चाहिये। भक्तका बहुत ऊँचा दर्जा है, वैसा देवताओंका नहीं है। देवता तो भोगी हैं।

श्रोता—हनुमान्‌जीकी उपासनासे वैकुण्ठकी प्राप्ति होती है या स्वर्गकी?

स्वामीजी—उनकी उपासनासे परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है!

श्रोता—हनुमान्‌जीको तुलसीदल चढ़ा सकते हैं कि नहीं?

स्वामीजी—नहीं। उनकी जनेऊ भी मूँजकी है—***'काँधे मूँज जनेऊ साजै'!*** कारण कि शरीर हनुमान्‌जी [वानर]-का है!

श्रोता—चारों तरफ लड़ाई-झगड़ा होनेका आसार हो रहा है, तो यह मृत्युभय कैसे मिटे?

स्वामीजी—भगवान्‌को पुकारो कि 'हे मेरे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। यह उपाय है!

*** *** ***

जैसे आपने मान लिया कि 'यह गंगाजी है', ऐसे ही मान लें कि 'यह सब परमात्मा है'। फिर इसमें सन्देह नहीं करें। कसौटी नहीं लगायें। तात्पर्य है कि भगवान्‌की प्राप्ति होनेसे ऐसे-ऐसे लक्षण होते हैं, पर वे लक्षण तो हुए नहीं—यह कसौटी नहीं लगायें। वे लक्षण नहीं आये तो नहीं सही। भगवान्‌से कह दें, बस। यह बहुत बढ़िया चीज है!

भगवान् भक्तोंको भी मिलते हैं और पापीको भी मिलते हैं—इस बातपर विश्वास करें। भगवान् जैसे भक्तवत्सल हैं, ऐसे पतितपावन भी हैं। हम भक्त नहीं हैं तो कोई बात नहीं, पापी तो हैं ही! अपना नाम भक्तोंमें नहीं लिखवा सकते तो पापियोंमें लिखवा लो! भगवान् भक्तोंपर ही कृपा करें, पापियोंपर नहीं करें तो इसमें उनकी महिमा नहीं है। उनकी महिमा तो पतितपावन होनेमें है।

*** *** ***

श्रोता—'चुप साधना' में प्रवेश करनेका रास्ता नहीं मिल रहा है!

स्वामीजी—जो साधन ठीक समझमें न आये, उसको छोड़ दो, और जो ठीक समझमें आये, उसको शुरू कर दो। उस साधनकी कृपासे दूसरा साधन भी समझमें आ जायगा! चिन्ता मत करो। जो आपके समझमें आये, उसी साधनको ठीक तरहसे करो।

श्रोता—'चुप साधना' पर प्रकाश डालें।

स्वामीजी—मेरेको करना कुछ नहीं है, मेरेको कुछ नहीं चाहिये—यह बात भीतरमें होती है, तब चुप साधन समझमें आता है। हमारेको करना कुछ है ही नहीं—यह सिद्धान्तकी बात है। ध्यान देकर सुनें। ***'ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी॥'*** तो अविनाशीके लिये क्या करना है? चेतनके लिये क्या करना है? अमलके लिये क्या करना है? और सहज सुखराशिके लिये क्या करना है? अपनेमें क्या कमी रही? करना उसके लिये होता है, जिसमें कमी होती है। हमारेमें कुछ कमी है ही नहीं, इसलिये हमें करना कुछ है ही नहीं। अतः हमें चुप हो जाना है। चुप होनेसे, कुछ नहीं करनेसे हमारी स्थिति परमात्मामें ही होगी। परमात्माके सिवाय और कहीं स्थिति होगी ही नहीं।

स्वरूपमें स्थिति होनेपर करना कुछ नहीं होता। करना तब होता है, जब शरीरमें स्थिति होती है।

श्रोता—मेरा कुछ नहीं है, मुझे कुछ नहीं चाहिये और मुझे कुछ नहीं करना है—ये तीनों हुए बिना भी क्या चुप साधन हो सकता है?

स्वामीजी—इन तीनोंकी लालसा हो जाय तो चुप साधन हो सकता है। तात्पर्य है कि 'मेरा कुछ नहीं है, मुझे कुछ नहीं चाहिये और मुझे कुछ नहीं करना है'—ऐसी स्थितिका अनुभव करनेकी जोरदार इच्छा हो जाय तो चुप साधन हो जायगा।

श्रोता—कामना रहते हुए चुप साधन करनेका क्या तरीका है?

स्वामीजी—एक तो कामना-रहित हैं और एक कामना-रहित होना चाहते हैं। कामना रहते हुए हम ऐसी स्थिति चाहते हैं कि कोई कामना न रहे तो चुप साधन हो जायगा।

चुप साधन करनेका एक स्थूल उपाय है कि अपनी नासिकासे तीन-चार बार जोर-जोरसे फुँकार (श्वास) बाहर छोड़कर फिर बाहर ही श्वास रोककर चुप हो जायँ। इसके लिये योगदर्शनका सूत्र है—

'प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य' (समाधि० ३४)

'प्राणवायुको बारंबार बाहर निकालने और रोकनेके अभ्याससे भी चित्त निर्मल होता है।' *[दोनों नासिकाओंसे श्वासको लोहारकी धौंकनीकी तरह बाहर फेंकना 'प्रच्छर्दन' और उस श्वासको बाहर ही रोक देना 'विधारण' कहलाता है।]*

ऐसा करनेसे आपकी समझमें 'कुछ न करना' आ जायगा। दूसरा उपाय है—अपनी पलकोंको बार-बार तेजीसे खोले-मीचें। इससे मनमें होनेवाले संकल्प-विकल्प थोड़ी देरके लिये कट जायँगे। जो कुछ नहीं करनेकी स्थितिका अनुभव करना चाहता है, उसके लिये ये दो स्थूल उपाय हैं।

हमारा कुछ नहीं है और हमें कुछ नहीं चाहिये—इसमें 'हम' शब्दसे अविनाशी, चेतन, अमल और सहज सुखराशि को समझना चाहिये।

श्रोता—भक्तियोगका साधक 'चुप साधन' कैसे कर सकता है।

स्वामीजी—वह भगवान्‌के चरणोंमें पड़ जाय कि बस, हमें और कुछ करना नहीं है। परन्तु चरणोंका चिन्तन नहीं करना है—**'न किञ्चिदपि चिन्तयेत्'** (गीता ६। २५)। चिन्तन करनेसे वृत्ति नीचे आ जायगी, साधन दो नम्बर हो जायगा।

श्रोता—एक साधक भगवान्‌का ध्यान करता है अथवा भगवान्‌की लीलाओंका चिन्तन करता है, और एक साधक भगवान्‌के चरणोंमें पड़कर कुछ भी चिन्तन नहीं करता है, चुप हो जाता है, दोनोंमेंसे कौन तेज है?

स्वामीजी—कुछ भी चिन्तन न करनेवाला तेज होगा। कुछ भी न करें तो परमात्मामें ही स्थिति होगी। लीलाका चिन्तन करते-करते भी चुप हो जायगा। लीला अपने-आप दीखेगी। लीला दीखे तो उसमें न मन लगाना है, न मन हटाना है। अपनी तरफसे कुछ नहीं करना है।

श्रोता—कर्मयोगी 'चुप साधन' कैसे करे?

स्वामीजी—कर्मयोगी कर्म करते-करते चुप हो जाय। कुछ न करना कर्मयोगका फल है। करना तभीतक है, जबतक करनेकी इच्छा है। करनेकी इच्छा न हो तो कुछ नहीं करना है।

जो अपने-आप होता है, वह बढ़िया होता है; क्योंकि उसमें कर्तृत्वाभिमान नहीं होता। परन्तु जो प्रयत्नपूर्वक किया जाता है, वह बढ़िया नहीं होता; क्योंकि उसमें कर्तृत्वाभिमान रहता है।

श्रोता—'चुप साधन' से सिद्धि होनेमें कितना समय लग जाता है?

स्वामीजी—बहुत जल्दी सिद्धि हो जाती है। साधन ठीक नहीं होनेसे ही देरी लगती है। ठीक चुप साधन हो जाय तो बहुत जल्दी सिद्धि हो जाती है। एक-दो दिनमें सिद्धि हो जाती है! कारण कि सिद्धि करनी नहीं है, वह तो है! जो करनी पड़ती है, उसमें दिन लगते हैं, पर जो पहलेसे है, उसमें क्या दिन लगें?

श्रोता—तब तो एक-दो दिन भी नहीं लगने चाहिये?

स्वामीजी—आपके चित्तमें विक्षेप है, इसलिये एक-दो दिन लगते हैं।

श्रोता—मैं आपके सत्संगमें बीस-इक्कीस महीनोंसे हूँ। बुढ़ापेके कारण शरीर कमजोर हो रहा है।

कुटुम्बके सहयोगके बिना सत्संगमें रहनेमें असमर्थता लगती है। घर जानेकी इच्छा नहीं है। यदि मरते समय घरकी याद आ जायगी तो बड़ी दुर्दशा होगी—इस बातसे बड़ी घबराहट हो रही है! क्या करूँ?

स्वामीजी—'हे मेरे नाथ! हे मेरे नाथ!' पुकारो। ठीक हो जायगा! भगवान्‌को पुकारनेके सिवाय और कोई बढ़िया उपाय नहीं है। भगवान्‌के भरोसे निश्चिन्त रहो। भगवान्‌की कृपापर विश्वास रखो कि उनकी कृपासे ठीक होगा, हम चिन्ता क्यों करें? सेवा करनेके लिये कोई-न-कोई मिल जाता है। भगवान्‌का प्रबन्ध है! हमारा एक भी चेला नहीं है, फिर भी सेवा करनेवाले कई आ गये! भगवान्‌के यहाँ सब तरहका प्रबन्ध है। अपरिचित सेवक मिल जायगा!

***　　　　***　　　　***

भाइयो-बहनोंको बड़ी सावधानीके साथ अपना समय भगवान्‌में लगाना चाहिये। हरदम एक ही प्रार्थना करो कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। भगवान् यादमात्रसे प्रसन्न हो जाते हैं—'**अच्युतः स्मृतिमात्रेण**'। इसलिये भगवान्‌से यही कहो कि मैं आपको भूलूँ नहीं। भगवान्‌को याद रखनेसे सब काम ठीक हो जायगा। हरदम प्रार्थना करो कि 'हे मेरे नाथ, हम किसी अवस्थामें हों, कैसी परिस्थितिमें हों, पर आपको भूलें नहीं। निरन्तर आपकी याद बनी रहे।' भगवत्स्मरणके बिना समय सार्थक नहीं होगा, निरर्थक चला जायगा। इसलिये अपनी एक ही प्रार्थना हो, एक ही माँग हो कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'।

भगवान् याद रहें तो सब ठीक हो जायगा। हमारे जीनेका एक ही मतलब है कि भगवान्‌को याद करें। **चलते-फिरते, उठते-बैठते, सोते-जागते हर समय नाम जपते रहो और एक ही बात कहते रहो कि 'हे नाथ! ऐसी कृपा करो कि मैं आपको भूलूँ नहीं'। आपका जीवन सार्थक हो जायगा!** अगर भगवान्‌की विस्मृति हो गयी तो बड़ी भारी हानि हो जायगी! एक भगवान्‌की स्मृति रहे तो सब काम हो जायगा। इतना सस्ता कोई साधन है नहीं! भगवान्‌की स्मृति सार चीज है। इसको अपने जीवनका ध्येय बना लो।

यहाँ सत्संगके लिये जितने भाई-बहन आये हैं, सभी हर समय भगवान्‌को याद रखें। गंगाजी जाते और आते समय, घरमें काम करते समय, रसोई बनाते समय, भोजन करते समय, हर समय भगवान्‌को याद रखें। भगवान्‌को याद रखें तो उनका जीवन सफल हो ही जायगा.....हो ही जायगा.....हो ही जायगा!! इसके समान कोई दूसरा काम नहीं है। एक भगवान्‌की स्मृति सम्पूर्ण विपत्तियोंका नाश करनेवाली है—'**हरिस्मृतिः सर्वविपद्विमोक्षणम्**' (श्रीमद्भा० ८। १०। ५५)। भगवान् याद रहें तो सब काम ठीक है, और भगवान्‌को भूल गये तो सब काम नष्ट है! धन काम नहीं आयेगा, भोग काम नहीं आयेगा, शरीर काम नहीं आयेगा, संसार काम नहीं आयेगा, कोई काम नहीं आयेगा, एक भगवान्‌की स्मृति काम आयेगी। यह असली चीज है।

तुलसी सो नर चतुर है, राम भजन लवलीन।
पर-धन पर-मन हरण को, वेश्या भी परवीन॥

***　　　　***　　　　***

श्रोता—यदि कोई अन्याय करे और हमारे मना करनेपर भी नहीं माने तो क्या करें?

स्वामीजी—चुप रहे। शक्ति नहीं है कि उसको मार दें या हटा दें, इसलिये आप हट जायँ। आप किनारे हो जायँ। अपने क्यों माथापच्ची करें?

तेरे भावै जो करौ, भलौ बुरौ संसार।

'नारायन' तू बैठि के, अपनौ भुवन बुहार॥

मेरे मनमें तो एक ही बात आयी है कि बाप-बेटा एक हो जाओ! **आप सब भगवान्के बेटे हैं और भगवान् सबके पिता हैं। आप बाप-बेटे एक तरफ हो जाओ और शरीर-संसार एक तरफ हो जायँ!**

*** *** ***

श्रोता—समस्त विश्वमें व्यापक ब्रह्म और जीवात्मा एक ही हैं या अलग-अलग?

स्वामीजी—यह प्रश्न बातोंसे नहीं सुलझेगा। षट्शास्त्रोंका पण्डित हो जाय, चारों वेदोंका पण्डित हो जाय तो भी नहीं सुलझेगा! सन्त-महात्माओंने ब्रह्म और जीवात्माको एक भी माना है और दो भी माना है। अगर आप जल्दी अपना कल्याण चाहते हैं तो भगवान्को अपना इष्ट मानकर उनके शरण हो जाओ। यह जल्दी कल्याण करनेवाला है! द्वैत-अद्वैतका झगड़ा उम्रभर करते रहो, कुछ नहीं मिलेगा! मैंने वर्षोंतक इसकी पढ़ाई की है! वेदान्तकी यह बात कि जीव और ब्रह्म एक हैं, यह बात धोखा देगी धोखा!! सच्चे हृदयसे भगवान्के शरण हो जाओ, यह सबसे बढ़िया चीज है! गीतामें इसको 'सर्वगुह्यतम' कहा है।

*** *** ***

संसारके पदार्थ प्राप्त करनेमें जो अड़चनें आती हैं, ऐसी अड़चनें भगवत्प्राप्तिमें नहीं आतीं। कारण यह है कि कितना ही बड़ा आदमी हो, कितना ही धनी आदमी हो, पर सम्पूर्ण वस्तुएँ किसीके पास नहीं होतीं। परन्तु परमात्मा सबके पास पूरे-के-पूरे हैं! जो कभी हमसे दूर होता ही नहीं, ऐसे नित्यप्राप्त परमात्माको प्राप्त करना है। जिसका हमारेपर हक नहीं और हमारा जिसपर हक नहीं, वह चीज हमारेको नहीं मिलती। परन्तु परमात्माका हमारेपर पूरा हक है और हमारा परमात्मापर पूरा हक है; क्योंकि हम परमात्माके अंश हैं। परमात्मा नित्यप्राप्त भी हैं और उनपर हमारा अधिकार भी है।

संसारकी वस्तु पहले अप्राप्त थी, बीचमें प्राप्त हो गयी और अन्तमें फिर अप्राप्त हो जायगी। वह नित्य अप्राप्त है। परमात्मा नित्य प्राप्त हैं। आप परमात्माको प्राप्त नहीं करो तो भी परमात्मा आपके भीतर ज्यों-के-त्यों हैं। पापी-से-पापी, दुष्ट-से-दुष्टके भीतर भी परमात्मा पूरे-के-पूरे विराजमान हैं। ऐसे सदा साथ रहनेवाले परमात्माको हम बड़ी सुगमतासे प्राप्त कर सकते हैं। उनकी प्राप्तिमें हमारी जितनी स्वतन्त्रता है, उतनी संसारके पदार्थोंको प्राप्त करनेकी स्वतन्त्रता नहीं है। इसलिये परमात्मप्राप्तिसे निराश कभी किसीको होना ही नहीं चाहिये।

संसारकी वस्तुओंको प्राप्त करनेकी हमारी आदत पड़ी हुई है। परन्तु वास्तवमें यह आदत हमारा नुकसान करनेवाली है। परमात्माको प्राप्त करनेकी इच्छा हमारेको निहाल करनेवाली चीज है। ज्यों-ज्यों संसारका आकर्षण कम होता जायगा, त्यों-त्यों परमात्मप्राप्तिकी लालसा बढ़ती जायगी और अन्तमें परमात्माकी प्राप्ति हो ही जायगी। संसारकी वस्तुएँ तो कितनी ही प्राप्त कर लो, वे रहेंगी नहीं। संसारमें कोई हमारा साथ नहीं देगा और परमात्मा सदा हमारे साथ रहेंगे। वे कभी दूर हो सकते ही नहीं। अगर परमात्मा भी हमारेसे दूर होना चाहें तो दूर हो सकेंगे नहीं! इसलिये उनकी प्राप्तिके लिये निराश कभी नहीं होना चाहिये। हरदम उनकी प्राप्तिकी आशा बनी रहे, और वह उनकी कृपासे ही पूरी होगी।

यह बात मैंने बहुत बार कही है कि परमात्मा तो सदा साथ रहेंगे ही, और संसार साथ रह सकता ही नहीं। यह दोनोंका पक्का नियम है। जो साथमें नहीं रह सकता, उसको रखनेकी चेष्टा करते हैं, यह भूल है। इस भूलको मिटाकर नित्यप्राप्तको प्राप्त करनेकी अभिलाषा बढ़ानी चाहिये, और भगवान्से

यही प्रार्थना करनी चाहिये कि 'हे नाथ! आपकी कृपासे ही आपकी प्राप्ति होगी, मेरे उद्योगसे नहीं'। जो वस्तु स्वत:प्राप्त है, उसकी प्राप्तिमें उद्योग, परिश्रम कारण नहीं है। भगवान् प्रार्थना सुनते हैं। भीतरसे प्रार्थना होगी तो भगवान् बहुत सुगम दीखेंगे। कारण कि वे सबके परमपिता हैं। परमपिताको जैसी दया आती है, ऐसी संसारके पदार्थोंको दया आयेगी? रुपयोंको, भोगोंको आपसे मिलनेकी चाहना होगी? भगवान् प्राणिमात्रके परम सुहृद् हैं—**'सुहृदं सर्वभूतानाम्'** (गीता ५। २९)। मनुष्यजन्म मिला ही परमात्माकी प्राप्तिके लिये है।

पापी-से-पापी मनुष्यसे भी भगवान् अपनी तरफसे उपराम नहीं हैं। अगर आप भगवान्से विमुख हैं तो भगवान् भी आपसे विमुख रहेंगे—यह हो ही नहीं सकता। जो नित्यप्राप्त है, वह अप्राप्त हो ही नहीं सकता। उसमें हमसे दूर होनेकी सामर्थ्य ही नहीं है! हम उनके अंश हैं तो फिर उनसे दूर कैसे हो सकते हैं? केवल उनकी प्राप्तिकी लालसा होनी चाहिये।

*** *** ***

श्रोता—भगवान्में अनन्यभाव कैसे हो?

स्वामीजी—जो संसारमें है, उस अन्यभावको छोड़नेसे भगवान्में अनन्यभाव होगा। आप भजन-स्मरण भी करना चाहें और संसारका रस भी लेना चाहें, तो अनन्यभाव नहीं होगा। अन्य हो ही नहीं, तब अनन्य होगा। अत: संसारका महत्त्व ही भगवान्के अनन्यभावमें बाधक है। वह महत्त्व मिटा दो तो अनन्यभाव हो जायगा। संसार अन्य है, इसलिये आपको संसारकी आसक्ति छोड़नी है।

कृपया ध्यान दें। संसार प्रतिक्षण स्वत: आपसे अलग हो रहा है। अलग होनेपर भी आपका संसारके प्रति राग है। वह राग बाधक है! संसारका राग छोड़ दो भगवान्में अनन्यभाव अपने-आप हो जायगा। वास्तवमें आप भगवान्के अनन्य हैं। भगवान्का अंश होनेसे आपका भगवान्के साथ बाप-बेटेकी तरह घनिष्ठ सम्बन्ध है। रुपये और सुखभोग—इन दोकी आसक्ति सर्वथा छोड़ दो तो अनन्यभाव हो जायगा। अगर कठिनता मालूम दे तो रात-दिन 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!' पुकार करो। आपको बहुत मदद मिलेगी।

अन्य (संसार)-में राग नहीं रहेगा तो अपने-आप अनन्यभाव हो जायगा। अनन्यभाव करना नहीं पड़ता, प्रत्युत अन्यभाव छोड़ना पड़ता है।

*** *** ***

श्रोता—पिछले साल मैंने नामजपके साथ-साथ पाठका नियम लिया था। अब नामजपमें इतना मन लग गया कि पाठ भारी लगने लग गया!

स्वामीजी—कोई हर्ज नहीं, लाभकी बात है। नामजपमें मन लगना अच्छा है, और उसकी अपेक्षा भी भगवान्में प्रियता होना बहुत बढ़िया है। पाठकी अपेक्षा भी नामजप अच्छा लगना चाहिये, और नामजपकी अपेक्षा भी भगवान् अच्छे लगने चाहिये। नामजप साधन है, पर भगवान्में प्रेम साध्य है, साधनका फल है।

नामजपमें रुचि हुई है तो यह भगवान्की बड़ी भारी कृपा है! इसमें अपना उद्योग नहीं मानना चाहिये। भगवान्की तरफ खिंचाव हो, भगवान्में मन लगे तो समझना चाहिये कि भगवान्की कृपा हो गयी! **कृपा माननेसे भगवान्की कृपा विशेष प्रकट होती है।**

एक विलक्षण बात है कि भगवान् जैसे भक्तवत्सल हैं, ऐसे दीनबन्धु भी हैं, पतितपावन भी हैं! हृदयमें ऐसा समझो कि भगवान् पतितपावन हैं, इसलिये मेरा काम बन जायगा, नहीं तो मेरा उद्धार कठिन होता! भक्तोंमें अपना नाम भले ही न हो, पर पतितोंमें तो है ही! जैसे, कपड़ेमें मैल ज्यादा

हो तो धोबीको कपड़ा धोनेमें आनन्द आता है, मैले बछड़ेको चाटकर साफ करनेमें गायको आनन्द आता है, ऐसे ही पतितोंको शुद्ध करनेमें भगवान्‌को रस आता है! भगवान्‌की कृपामें जो ताकत है, वह ताकत पापोंमें नहीं है।

*** *** ***

सन्तोंकी वाणीमें मैंने पढ़ा है कि स्वयं करनेकी अपेक्षा किसी सन्तके कहनेसे काम करो तो ज्यादा लाभ होता है! बल आता है! शक्ति आती है! ऐसा कहनेमें मेरेको संकोच होता है, अभिमान होता है, पर आपके लिये बहुत बढ़िया चीज है! एक तो स्वयं भगवान् कहते हैं और एक सन्त कह दे कि 'भगवान् अपने हैं' तो दोनोंमें फर्क है। इसलिये अपने जाननेकी अपेक्षा कहनेवालेके वचनोंका विशेष आदर करो। आप मेरेपर डाल दो कि स्वामीजी कहते हैं!

सेठजी (श्रीजयदयालजी गोयन्दका)-ने एक-दो बार कहा था कि मेरे भरोसे तुम निश्चिन्त हो जाओ। एक बार यह भी कहा कि काम-क्रोध आये तो कह दो कि हम जयदयालजीके सत्संगी हैं, तुम कैसे आये! यह सत्संग भी सेठजीका है, आपका-हमारा नहीं है। सेठजीने कहा कि कैसा ही आदमी हो, उसको सत्संगमें लाकर बैठा दो। बस, इतना काम आपका है। सब काम ठीक हो जायगा। यह सेठजीका सत्संग है! भगवान्‌की कृपासे कोई बात दुर्लभ नहीं है!

*** *** ***

श्रोता—हमारा विवेक कैसे जाग्रत् हो?

स्वामीजी—विरोधी चीजको छोड़नेसे असली चीज पैदा होती है। जबतक संसारमें सत्ताबुद्धि, सुखबुद्धि, लाभबुद्धि रहेगी, तबतक विवेक जाग्रत् होगा नहीं। कारण कि परमात्मतत्त्वका तो संसारसे विरोध नहीं है, पर विवेकका संसारसे विरोध है। विवेक होनेसे जिज्ञासा पैदा होती है। जिज्ञासा जोरदार होनेसे जड़ताका त्याग हो जाता है। इसलिये आप विवेकको महत्त्व दो और अविवेकका त्याग करो। आप भोगोंको और रुपयोंको ज्यादा महत्त्व देते हो। इनको महत्त्व देनेसे आदमी विचलित हो जाता है, उसकी बुद्धि ठिकाने नहीं रहती।

भोगके पहले भी दुःख है और अन्तमें भी दुःख है। पहले दुःख हुए बिना भोग सुख दे ही नहीं सकता; जैसे—भूख बढ़िया लगनेपर ही भोजन सुख देता है। भूख न हो तो बढ़िया-से-बढ़िया भोजन भी सुख नहीं देता। दुःखके बिना किसीको भी सुख अच्छा नहीं लगता। भोगोंका सुख लेनेके लिये पहले दुःख होना आवश्यक है। मनुष्य भोगके आरम्भको ही ज्यादा महत्त्व देता है। अगर वह हिम्मत करके भोगके अन्तकी अवस्थाको ठीक देखे तो भोगमें आकर्षण नहीं रहेगा। गीतामें आया है—

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम्।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम्॥

(गीता १८। ३८)

'जो सुख इन्द्रियों और विषयोंके संयोगसे होता है, वह आरम्भमें अमृतकी तरह और परिणाममें विषकी तरह प्रतीत होता है; अतः वह सुख राजस कहा गया है।'

संसारके जितने भी सुख हैं, उनका फल दुःख होगा ही—यह नियम है। मनुष्य भोगके आरम्भको देखते हैं, परिणामको नहीं देखते। अगर परिणामको देखें तो विवेक जाग्रत् हो जायगा। विवेक जाग्रत् होनेपर भोगोंमें सुख नहीं दीखेगा।

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।

आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥

(गीता ५। २२)

'हे कुन्तीनन्दन! जो इन्द्रियों और विषयोंके संयोगसे पैदा होनेवाले भोग (सुख) हैं, वे आदि-अन्तवाले और दुःखके ही कारण हैं। अतः विवेकशील मनुष्य उनमें रमण नहीं करता।'

अगर आप विवेकको जाग्रत् करना चाहते हो तो भोगोंकी इच्छाका त्याग करो। भोगोंका आरम्भ मत देखो, अन्त देखो। भोजन करनेके अन्तमें कोई जबर्दस्ती और खिला दे तो उल्टी हो जायगी। एक साधु थे। भिक्षा लेकर निर्वाह करते थे। एक दिन उनके मनमें खीर खानेकी आयी। उन्होंने एक सत्संगी हलवाईसे कहा कि बढ़िया खीर बनाओ। वह हलवाई बड़ा प्रसन्न हुआ कि ये कभी रोटीके लिये भी नहीं कहते, आज खीर बनानेको कह दिया! उसने केशर-पिस्ता डालकर खूब बढ़िया खीर बनायी। साधुने खीर ठण्डी करके खप्परमें भरवा ली। उस खीरको साधुने भरपेट पी लिया। पेट भरनेपर भी पीना नहीं छोड़ा कि मनमें आयी है तो खूब पी ले! इतना पी लिया कि उसकी उल्टी हो गयी! उल्टीको भी साधुने खप्परमें लेकर पी लिया! आँखें बाहर निकलने लगीं! फिर खीरसे इतनी अरुचि हो गयी कि उम्रभरमें खीरका नाम नहीं लिया!

परमात्मतत्त्व अविवेक (अज्ञान)-का विरोधी नहीं है, प्रत्युत जिज्ञासा अविवेककी विरोधी है। अतः जिज्ञासा होनेसे भोगेच्छा मिट जाती है। भोगेच्छा मिटनेसे विवेक जाग्रत् हो जाता है।

*** *** ***

श्रोता—आप कहते हैं कि परमात्मा तो हर समय हमारे साथ ही है, फिर परमात्माकी प्राप्तिका क्या सवाल है?

स्वामीजी—प्राप्ति तो है, पर आपने प्राप्ति नहीं मानी! आप परमात्मासे दूर हो सकते ही नहीं, पर आप इधर ध्यान देते ही नहीं! आप संसारकी तरफ ध्यान देते हैं। अगर आप ध्यान दें तो काम बना-बनाया है! वास्तवमें हम जिस परमात्माको प्राप्त करना चाहते हैं, वह स्वतः प्राप्त है और जिस संसारका त्याग करना चाहते हैं, उसका स्वतः त्याग है। प्राप्ति भी अपने-आप होती है और त्याग भी अपने-आप होता है। जिसका त्याग हो रहा है, उस वस्तुको आप पकड़ते हैं, खींचते हैं। परमात्मा हमारे हैं, संसार हमारा नहीं है—इतनी ही बात है, लम्बी-चौड़ी बात नहीं है! पक्की बात है कि संसार हमारे साथ नहीं रहेगा और परमात्मा कभी दूर नहीं होंगे। परमात्मा तो प्राप्त हैं ही, उल्टी बुद्धि आपकी हो रही है!

श्रोता—सेठजीने कहा था कि मेरे भरोसे आप निश्चिन्त हो जाओ, और आप कहते हैं कि भजन-साधन करो!

स्वामीजी—बात एक ही है! जो सेठजी कहते हैं, वही बात है! आप भजन-स्मरण करो और मेरे भरोसे निश्चन्त रहो! तत्परतासे भजन-स्मरण करो, ऊँचे-से-ऊँचा काम करो, और जीवन-निर्वाहकी चिन्ता मत करो। भगवान् सबका पालन करते हैं। अपना समय अच्छे-से-अच्छे काममें लगाओ और चिन्ता मत करो। चिन्तासे कोई लाभ नहीं है। चिता मुरदेको जलाती है और चिन्ता जीतेको जलाती है।

*** *** ***

श्रोता—हमारे परिवारमें एक कन्या है। वह हमारा कहना नहीं मानती, हमारे विरुद्ध चलती है, लेकिन उसकी ममता हमसे छूटती नहीं! वह रात-दिन हमको परेशान करती है! हमारी नींद और चैन

सब खत्म हो गया! शान्तिका कोई उपाय बताइये।

स्वामीजी—शान्तिका उपाय त्याग है, पर वह आप कर सकते नहीं! त्यागसे तत्काल शान्ति मिलती है—'**त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्**' (गीता १२। १२)। आप त्याग नहीं कर सकते तो क्या कर सकते हो? यह सोचो। जब वह किसीसे मानती ही नहीं तो फिर उसके सुधारके लिये क्या कर सकते हो? आपमें क्या सामर्थ्य है?

आजकलके लड़के-लड़कियाँ कहना मानते नहीं! बहुत कम होते हैं, जो मानते हैं। वायुमण्डल ऐसा ही हो गया है। बढ़िया बात यही है कि सबमें ममता त्यागकर भगवान्‌में लग जाओ। भगवान्‌से प्रार्थना करो कि 'हे नाथ! हे नाथ! हे मेरे नाथ! हे मेरे नाथ! त्याग करनेकी सामर्थ्य दो'। भगवान्‌के चरणोंके शरण होकर भगवान्‌को ही अपना मान लो। फिर ममताका त्याग हो जायगा। भगवान्‌की कृपासे त्याग होगा, अपनी शक्तिसे नहीं। इसके सिवाय दूसरा उपाय हम जानते नहीं! बच्चीको ब्याह दो।

आपकी तो बेटी है, हमारे सत्संगी हैं! सत्संगी तो सत्संगकी बात माननेके लिये ही आते हैं, और उनका क्या काम है? पर वे भी मेरी चोटी रखनेकी बात नहीं मानते! यह तो मेरे जैसा निर्लज्ज आदमी है, जो इनके बीचमें बैठा है!!

हमारे मनमें यह लालसा है कि स्त्री-पुरुष सब-के-सब महात्मा बन जायँ, तत्त्वज्ञ बन जायँ, जीवन्मुक्त बन जायँ, परमात्मतत्त्वको प्राप्त कर लें।

*** *** ***

ठीक तत्व समझ लें तो सब साधन सुलभ हो जाते हैं। एक बात तो यह समझनी है कि साधकमात्र निराकार होता है। साकार शरीर साधक नहीं होता। यह तो मर जायगा, फिर साधक कैसे रहेगा? शरीर मर जायगा तो क्या साधक भी मर जायगा? साधक स्वयं होता है। शरीर तो चोलेकी तरह है। आपने कुरता पहन लिया तो क्या कुरता साधक हो गया? आपने चादर ओढ़ ली तो क्या चादर साधक हो गयी?

जो चीज मिलती है और बिछुड़ जाती है, वह अपनी नहीं होती—यह बात सदैव याद रखो। भावशरीर साधक होता है। आपका भाव साधक है। भाई हो या बहन हो, आप शरीर नहीं हो। माँ-बाप, भाई-बन्धु, कुटुम्बी आदि सब सम्बन्ध शरीरको लेकर हैं। पर आप शरीर नहीं हैं—यह बात धारण कर लेनी चाहिये।

दूसरी बात, साधकका साध्य क्या है? साध्य परमात्मा है। परमात्माको प्राप्त करना है। परमात्मासे कभी वियोग होता ही नहीं। वे सबके हृदयमें विराजमान हैं। वास्तवमें सब रूपोंमें भगवान् ही हैं। अगर साधक सब रूपोंमें भगवान्‌को देखे तो उसका साधन बहुत सुगम हो जायगा।

*** *** ***

सत्य वस्तु परमात्मा स्वाभाविक सब जगह परिपूर्ण है। साधक दोषोंको दूर करके अपनेमें निर्दोषता लाना चाहता है। वास्तवमें दोषोंको दूर करनेकी अपेक्षा 'अपनेमें दोष नहीं है'—यह स्वीकार करना बढ़िया है। अपनेमें निर्दोषता स्वतः-स्वाभाविक सिद्ध है। निर्दोषता व्यापक है। दोष व्यापक नहीं हैं। इसलिये साधक निर्दोषताको ही स्वीकार करे। केवल निर्दोषताको स्वीकार करनेसे दोष सर्वथा मिट जायँगे। दोषोंकी सत्ता मनुष्यकी दी हुई है। उनकी स्वतन्त्र सत्ता है ही नहीं। गुणोंकी स्वतन्त्र सत्ता है। परमात्माकी स्वतन्त्र सत्ता है। अपनेमें दोष मान लिया—इस मान्यतामें दोष है। संसारमें देखो, बाल-बच्चोंमें देखो, पशु-पक्षियोंमें देखो तो निर्दोषता स्वाभाविक दीखती है। सत्संग करते समय कोई दोष नहीं रहता। दोष

आगन्तुक होते हैं। निर्दोषता हरदम रहती है।

अपनेमें दोषोंको स्वीकार करने अथवा न करनेमें हम स्वतन्त्र हैं। दोष आता है और मिट जाता है—यह सबका अनुभव है। जिस वस्तुका संयोग और वियोग होता है, उसकी सत्ता नहीं होती। जिसकी सत्ता होती है, उसका संयोग और वियोग नहीं होता। चौरासी लाख योनियाँ बदलनेपर भी आप रहते हैं। आपकी सत्ता रहती है, पर शरीरोंकी सत्ता नहीं रहती। काम-क्रोध आयें तो आपकी सत्ता वैसी ही है, और काम-क्रोध चले जायँ तो आपकी सत्ता वैसी ही है। इसलिये आप अपनेमें निर्दोषताका अनुभव करो। जैसे ईश्वर निर्दोष है, ऐसे ही ईश्वरका अंश भी निर्दोष है—***'चेतन अमल सहज सुख रासी'***। इसलिये अपनेमें विकारको स्वीकार करना ही नहीं है। अपने लिये कुछ करना ही नहीं है। इस बातको लेकर साधकमें उत्साह होना चाहिये कि मेरेमें दोष नहीं है। **अगर आप स्वीकार न करें तो दोष आ सकता ही नहीं। स्वीकार किये बिना आनेकी शक्ति, स्वतन्त्रता दोषमें है ही नहीं। आप स्वीकार करते हैं, तब दोष आता है।**

जो दोषोंके आने-जानेका अनुभव करता है, वह खुद सर्वथा निर्दोष है। दोष मन-बुद्धिमें आते हैं और चले जाते हैं। परन्तु मन-बुद्धिके साथ एकता माननेसे दोष अपनेमें दीखते हैं। विकार आते-जाते हैं, आप ज्यों-के-त्यों रहते हैं। विकारोंका आना-जाना और आपका निर्विकार रहना—ये दोनों अनुभवसिद्ध हैं। आप निर्विकाररूपसे नित्य-निरन्तर रहते हैं।

*** *** ***

जब दु:ख ज्यादा होता है, तब कामवृत्ति ज्यादा रहती है। इसलिये रामायणमें आया है—

देव दनुज नर किंनर ब्याला। प्रेत पिसाच भूत बेताला॥
इन्ह कै दसा न कहेउँ बखानी। सदा काम के चेरे जानी॥

(मानस, बाल० ८५। ३-४)

'देव, दैत्य, मनुष्य, किन्नर, सर्प, प्रेत, पिशाच, भूत, बेताल—ये तो सदा ही कामके गुलाम हैं, यह समझकर मैंने इनकी दशाका वर्णन नहीं किया।'

कारण कि दु:ख ज्यादा होता है, तभी कामवृत्ति ज्यादा होती है। आनन्द रहनेपर कामवृत्ति नहीं होती; स्वरूपमें जो सुख (आनन्द) है, वह काममें है ही नहीं। अत: स्वरूपका सुख मिलनेपर काम तंग नहीं करता।

सभी मनुष्य दो जगह सुखका अनुभव करते हैं—नींदमें और काममें। दु:ख आनेपर साधक तो भगवान्‌में लगेगा और संसारी मनुष्य नींदमें अथवा भोगमें लगेगा। अमेरिकामें दुर्घटना घटी तो लोग भोगोंमें लग गये! उनको स्वरूपके सुखका पता ही नहीं है! परन्तु सत्संग करनेवाले इस बातको जानते हैं। सत्संग, भजन-ध्यान करनेवालोंको भगवान्‌में सुख मिलता है। जब पृथ्वीपर संकट आता है, तब पृथ्वीसहित सभी देवता भगवान्‌को पुकारते हैं (मानस, बाल० १८४-१८६)। **दु:ख आनेपर भगवान्‌को पुकारना भारतवर्षकी रीत है। यह विशेषता भारतवर्षमें ही है।** कोई आफत आये तो भगवान्‌को पुकारो। आध्यात्मिक उन्नति भी करनी हो तो भगवान्‌को याद करो कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। भगवान्‌को याद करनेमें जो आनन्द है, वह भोगोंमें अथवा नींदमें नहीं है।

*** *** ***

ग्रन्थोंमें आता है—**'अध्यारोपापवादाभ्यां निष्प्रपञ्चं प्रपञ्चते'** 'अध्यारोप और अपवाद—इन दोनोंसे निष्प्रपंचका प्रपंच (परमात्मतत्त्वका विवेचन) होता है।' माया है, दोष है, संसार है—यह 'अध्यारोप'

है, और इसको दूर करना 'अपवाद' है। पहले अध्यारोप करो, फिर अपवाद करो, तब परमात्माकी प्राप्ति होगी। परन्तु मैं कहता हूँ कि अध्यारोप है ही नहीं! आप मेरी बातोंपर ध्यान नहीं देते! अगर ध्यान दो तो चिपक जाओगे! आप 'सहज साधना' पुस्तक पढ़ो। इसमें बहुत बढ़िया बात बड़ी सीधी-सरलतासे बतायी गयी है। ऐसी विलक्षण बातें मिलती नहीं है! मैंने वर्षोंतक अध्यारोप-अपवाद किया है, पर कुछ लाभ नहीं हुआ। वास्तवमें हमें अध्यारोप करना ही नहीं है। एकदम सच्ची बात है। पढ़ाईमें आता है कि अपने लिये ही करना है, पर मैं कहता हूँ कि अपने लिये कुछ नहीं करना है! पहले अपनेमें दोष मानो, फिर उस दोषको दूर करनेका प्रयत्न करो—इसकी अपेक्षा सीधे ही अपनेमें निर्दोषताका अनुभव करो। कारण कि भगवान्‌का अंश होनेसे जीव पहलेसे ही शुद्ध है।

मेरी हाथ जोड़ करके प्रार्थना है कि आप इस बातको मानो। बहुत जल्दी काम हो जायगा! उपनिषद्‌में लिखा है—'**श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः**' (कठोपनिषद् १। २। ७) 'जो बहुतोंको तो सुननेके लिये भी नहीं मिलता।' **जो बातें सुननेके लिये भी नहीं मिलतीं, वे आज विशेषतासे प्रकट हो रही हैं!** पर आप कहनेपर भी परवाह ही नहीं करते! ऐसी बातें पुस्तकोंसे नहीं मिलती, व्याख्यानसे नहीं मिलती! दूसरी जगह मिलती ही नहीं!! ऐसी बात है कि सब-के-सब जीवन्मुक्त हो सकते हैं, परमात्माकी प्राप्ति कर सकते हैं, भगवान्‌के प्रेमी हो सकते हैं!

वास्तवमें काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि दोष आपमें नहीं हैं। अगर आपमें दोष होते तो हरदम आपके साथ रहते। आपके रहते जाते नहीं। कपड़ेमें लाली होगी तो कपड़ेके साथ ही रहेगी। आपमें काम-क्रोध होते तो अभी (सत्संग करते समय) भी आपमें रहने चाहिये। आप काम-क्रोधके बिना भी रहते हो। आप हरदम शुद्ध रहते हो। कम-से-कम इतना तो मान लो कि दोष आगन्तुक हैं, आते हैं। परन्तु आपने मान लिया कि हमारेमें दोष हैं! आपको दोष कितने प्यारे लगते हैं! हम कहते हैं कि नहीं हैं, पर आप कहते हैं कि हैं! हम छुड़ायें तो आप छोड़ते नहीं! हमारेमें काम-क्रोध हैं—यह काम-क्रोधको निमन्त्रण देना है! निमन्त्रण दोगे तो वे आयेंगे ही! ***'न्योता साधु सिंह बराबर, अणन्योता है गाय'!***

*** *** ***

श्रोता—जिसको परमात्माकी प्राप्ति नहीं हुई है, वह किसी दूसरेको प्राप्ति करवा सकता है क्या?

स्वामीजी—वह कह सकता है, वर्णन कर सकता है, पर प्राप्ति नहीं करवा सकता। कोई अच्छा अधिकारी हो तो उन बातोंको पकड़कर प्राप्त कर सकता है। परन्तु प्राप्ति खुद ही कर सकता है, दूसरेको नहीं करा सकता। जिसे खुदको तैरना नहीं आता, वह दूसरेको कैसे तारेगा? खुदको तैरना आता हो तो वह दूसरेको तैरना सिखा सकता है।

श्रोता—नामजप करते समय बहुत-से दूसरे विचार आते रहें तो नामजप करते रहना चाहिये या नामजप छोड़कर कोई दूसरा साधन पकड़ना चाहिये?

स्वामीजी—नामजप करो, पर एक बात हमारी मान लो कि नामजप करो और कानोंसे सुनो। एक नाम भी सुने बिना मत जाने दो। वाणीसे जप करो और कानोंसे सुनो अथवा मनसे जप करो और मनके कानोंसे सुनो। इससे बहुत फायदा होगा। यह बात मामूली नहीं है, बहुत दामी बात है!

मन न लगे तो भी नामजप करना अच्छा है; क्योंकि कुछ न करनेकी अपेक्षा कुछ करना अच्छा ही है—'**अकरणात् मन्दकरणं श्रेयः**'। परन्तु इससे कल्याण नहीं होगा। कल्याण तो मन लगाकर जप करनेसे ही होगा।

*** *** ***

स्वयं जो परमात्माका अंश है, इसमें कोई दोष नहीं आता—***'ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी॥'***। यह सदासे ऐसा ही है और सदा ही ऐसा रहेगा। इसमें कभी कोई दोष नहीं आयेगा। कर्तृत्व-भोक्तृत्व दोष मन-बुद्धिमें आते हैं। मन-बुद्धिसे तादात्म्य माननेके कारण दोष अपनेमें दीखते हैं। अपने स्वरूपमें दोष नहीं हैं। गीतामें आया है—**'शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते'** (गीता १३। ३१) 'यह शरीरमें रहता हुआ भी न करता है और न लिप्त होता है'। अत: वास्तवमें दोषीमें भी दोष नहीं है और निर्दोषमें भी दोष नहीं है अर्थात् मायामें लिप्त जीवमें भी दोष नहीं है और जीवन्मुक्तमें भी दोष नहीं है! जीवन्मुक्तके भी मन-बुद्धि तो रहेंगे ही, पर उनमें दोष नहीं आते। सभी दोष रागसे, कामनासे पैदा होते हैं। कामना नहीं रहे तो दोष आयेगा ही नहीं।

शास्त्रोंमें आता है कि पहले अपनेमें दोषोंका अध्यारोप करो, फिर उसका अपवाद करो, उसको दूर करो। मैं कहता हूँ कि अपनेमें दोषका आरोप ही मत करो, प्रत्युत पहले ही अपनेमें निर्दोषताको स्वीकार कर लो। *'सहज साधना'* पुस्तकमें एक लेख है—*'निर्दोषताका अनुभव'*। उसमें लिखा है—

*'भगवान्‌का साक्षात् अंश होनेसे जीवका भगवान्‌से साधर्म्य है। अत: जैसे भगवान् निर्दोष हैं, ऐसे जीव भी स्वरूपसे सर्वथा निर्दोष है। यह निर्दोषता अपने उद्योगसे लायी हुई नहीं है, प्रत्युत स्वत:सिद्ध और सहज है—**'ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी॥'** मनुष्योंके भीतर यह बात बैठी हुई है कि हम दोषोंको दूर करेंगे, निर्दोष बनेंगे, तब भगवान्‌की प्राप्ति होगी। परन्तु सांसारिक वस्तुओंको प्राप्त करनेका जो तरीका है, वह तरीका परमात्मतत्त्वकी प्राप्तिका नहीं है। सांसारिक वस्तुओंकी प्राप्ति तो अप्राप्तकी प्राप्ति है, पर परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति नित्यप्राप्तकी प्राप्ति है। **स्वरूप स्वत:-स्वाभाविक निर्दोष तथा नित्यप्राप्त है। अत: इस निर्दोषताको स्वीकार करना है, इसको बनाना नहीं है और दोषोंसे उपरत होना है, उनको मिटाना नहीं है।** तात्पर्य है कि अपनेमें निर्दोषता तो वास्तवमें है और सदोषता मानी हुई है, है नहीं। अत: इस मान्यताका त्याग करना है। **अगर दोषोंको अपनेमें स्वीकार करके फिर उनको दूर करनेका प्रयत्न करेंगे तो वे दूर नहीं होंगे, प्रत्युत और दृढ़ हो जायँगे।** कारण कि दोषोंको अपनेमें मानकर उनको सत्ता देंगे, तभी तो उनको मिटानेका उद्योग करेंगे!'*

तात्पर्य यह हुआ कि दोष दूर करनेकी अपेक्षा अपनेमें दोषको स्वीकार न करना ही बढ़िया है।

दोष मन-बुद्धिमें आते हैं, आपतक पहुँचते ही नहीं। आपतक पहुँचनेकी उनमें ताकत ही नहीं है। मन-बुद्धि अपरा प्रकृतिके अंश हैं, आप परमात्माके अंश हो। अपरा प्रकृतिके साथ दोषोंकी एकता है। आपके साथ दोषोंकी एकता नहीं है। इसलिये आपमें दोष नहीं आते। इस बातको आप स्वीकार कर लो। मन-बुद्धिके साथ आपने एकता मान ली, इसलिये दोष आपमें आते हुए दीखते हैं। सम्बन्ध सजातीयतामें होता है। मन-बुद्धिके साथ आपकी सजातीयता नहीं है। आपकी सजातीयता भगवान्‌के साथ है। अत: मेरेमें दोष नहीं हैं—इस बातको आप दृढ़तासे स्वीकार कर लो तो फिर मन-बुद्धिमें भी दोष नहीं आयेंगे।

श्रोता—मन-बुद्धिमें दोष क्यों आते हैं?

स्वामीजी—इसलिये आते हैं कि मन-बुद्धि-अहंकारको आपने अपना मान लिया, और अपना मानकर आपने भोग तथा संग्रहकी कामना की। जब मन-बुद्धिमें दोष आते हैं, तब मन-बुद्धि भी दोषी बन जाते हैं। आप अपनेमें निर्दोषताको स्वीकार करो तो फिर मन-बुद्धिमें भी दोष नहीं आयेंगे।

*** *** ***

श्रोता—आप कहते हैं कि सन्तके पास रहनेसे दोष दूर होते हैं, तो सन्तके कितने नजदीक और कितने दूर रहनेसे फर्क पड़ता है?

स्वामीजी—सन्तके नजदीक रहनेका मतलब है—उनकी बात मानना। अगर सन्तकी बात माने तो कोसों दूर रहनेपर भी वह सन्तके नजदीक है! अगर बात न माने तो पासमें रहते हुए भी दूर है!

सिद्धान्त है कि आत्मा सर्वथा शुद्ध, निर्लेप है। उसमें पहलेसे ही निर्दोषता स्वत: है। उसमें दोषोंका आरोप करनेकी जरूरत नहीं है। आरोप करके फिर दोष हटाते हैं तो वे दोष जल्दी हटते नहीं। वास्तवमें दोषोंको हटानेसे दोष दृढ़ होते हैं! हमारेमें काम-क्रोध-लोभ हैं और हम उनको हटाते हैं तो वे भीतरमें दृढ़ होते हैं। उनको हटानेका ज्यों जोर लगाते हैं, त्यों वे दृढ़ होते हैं। अगर मान लें कि वे हमारेमें नहीं हैं तो वे दूर हो जायँगे। ऐसी बातें शास्त्रोंमें, हरेक जगह नहीं मिलती!

जिस समय हम सत्संग करते हैं, उस समय हम इस लोकमें नहीं रहते! वह लोक दूसरा है। सत्संगमें हमारा सत् (परमात्मा)-के साथ संग होता है। इस लोकमें असत्‌के साथ संग होता है।

*** *** ***

इस बातको आप स्वीकार कर लो कि मेरेमें दोष नहीं है। अगर आपमें दोष हो तो जबतक आप रहोगे, तबतक दोष रहेगा ही। कपड़ेमें रंग हो तो वह कपड़ेमें हरदम रहेगा। अगर आप रहते हो और दोष नहीं है तो आपमें दोष नहीं है। दोषकी जड़ नहीं है। सच्ची बात यह है कि आप हैं और दोष नहीं है। आप सर्वथा शुद्ध हैं। **इतनी-सी बात आप पकड़ लो कि आप हो और दोष नहीं है।**

श्रोता—एक शंका है कि हम ऐसा मानें कि हम हैं और दोष नहीं हैं, हम निर्दोष हैं, और समय-समयपर काम, क्रोध, लोभ आदि दोष भी आते रहें तो इससे हमारा कल्याण हो जायगा?

स्वामीजी—आपमें कैसे दोष आ जायगा? आपने अपनेमें माना ही नहीं तो कैसे आ जायगा? **आप अपनेमें स्वीकार करते हैं तब दोष आता है। जबर्दस्ती नहीं आता।** आपने मान रखा है कि मेरेमें दोष है, तब दोष आता है। आप नहीं मानो तो कैसे आयेगा? आयेगा ही नहीं! पुरानी आदतसे एक-दो बार आयेगा, फिर छूट जायगा। मेरेमें नहीं है—इस बातको पक्की करो तो कैसे आ जायगा? मेरेमें क्रोध है—इस मान्यतासे क्रोध आता है। आप अपनेमें क्रोध नहीं मानो तो कैसे आयेगा? **अपनेमें माननेसे ही दोष आते हैं, नहीं मानो तो आ सकते ही नहीं; क्योंकि दोषोंकी जड़ ही नहीं है।**

*** *** ***

दो प्रकारके साधन हैं, एक हम भगवान्‌का चिन्तन करके भगवान्‌में स्थित हो जायँ और दूसरा, अपने-आपको भगवान्‌के अर्पण कर दें, भगवान्‌में मिला दें। इन दोनोंमें अपने-आपको भगवान्‌में मिलाना बढ़िया है। भगवान्‌में मिलानेसे भगवान् ही रहेंगे, हम नहीं रहेंगे। चिन्तन करेंगे तो मैं-पना जल्दी मिटेगा नहीं। भगवान्‌का चिन्तन करनेसे हमारी मुख्यता रहेगी, जिससे अहंकार मिटेगा नहीं। अगर अपने-आपको भगवान्‌के समर्पित कर दें तो भगवान्‌की मुख्यता रहेगी। भगवान्‌की मुख्यता रहनेसे एकदेशीयता, परिच्छिन्नता नहीं रहेगी। भगवान्‌के समर्पित होनेसे मैं, तू, यह और वह—ये चारों छूट जायँगे। हमारी जगह भगवान् आ जायँगे।

बात दोनोंमें एक ही है। हम चिन्तन करें तो भी परमात्मा रहेंगे, और अपने-आपको परमात्माके अर्पण कर दें तो भी परमात्मा रहेंगे; परन्तु हम चिन्तन करेंगे तो मैं-पन साथमें रहेगा। हाथीको अपनेपर चढ़ानेकी अपेक्षा हाथीपर चढ़ना बढ़िया है। भगवान्‌का चिन्तन करना हाथीको अपनेपर चढ़ाना है और

अपने-आपको भगवान्‌के अर्पण करना हाथीपर चढ़ना है!

श्रोता—जबतक अपने-आपको भगवान्‌के अर्पण करनेकी स्थिति नहीं आये, तबतक क्या भगवान्‌का चिन्तन करना छोड़ दें?

स्वामीजी— 'हे मेरे नाथ! हे मेरे नाथ!' पुकारें।

आप कोई चीज हमारेको दे दो तो उस चीजमें अपनापन मिट जायगा। परन्तु हरेक भाई-बहनकी यह वृत्ति होती है कि मैं महाराजको रोटी दूँ तो वे मेरी रोटी खायें। मैं कपड़ा दूँ तो मेरा कपड़ा पहनें। इससे सिद्ध यह हुआ कि वस्तुमें मेरापन छूटा नहीं! आपने कपड़ा दिया नहीं है, प्रत्युत महाराजके ऊपर कब्जा किया है! अपने कपड़ेसे उनको खरीदा है! अगर आपने कपड़ा दिया है तो वे उस कपड़ेको अग्निमें भी डाल दें तो मनमें प्रसन्नता होनी चाहिये। आपने कपड़ा दे दिया तो वे चाहे पहनें, चाहे अग्निमें डालें।

आप सोचते हैं कि हम दान कर रहे हैं, पर आप दान नहीं कर रहे हो, प्रत्युत डाका डाल रहे हो! आप अपनी वस्तु भी अर्पण नहीं कर सकते तो अपने-आपको अर्पण क्या करोगे!! हमने भगवान्‌को दे दिया तो अब भगवान्‌का अधिकार है, हमारा कोई अधिकार नहीं है।

*** *** ***

श्रोता—आप कहते हैं कि अपनेको 'है' में मिला दो, परमात्मामें लीन कर दो, तो यह मिलाना अथवा लीन करना कैसे होता है?

स्वामीजी—जो आस्तिक सज्जन हैं, वे सब-के-सब इस बातको जानते हैं कि परमात्मा है और वह सब जगह स्वाभाविक परिपूर्ण है। परमात्मा सब देशमें है, सब कालमें है, सब वस्तुओंमें है, सम्पूर्ण अवस्थाओंमें है, सम्पूर्ण घटनाओंमें है, सम्पूर्ण क्रियाओंमें है। उस सब जगह परिपूर्ण परमात्मामें अपने-आपको मिलानेका अर्थ है—अपने-आपको उस परमात्मामें छोड़ देना। सिद्धान्त यह है कि जीव परमात्मासे मिला हुआ है और संसारसे बिछुड़ा हुआ है। ये दोनों बातें पहलेसे ही हैं! ये करनी नहीं हैं। केवल ख्याल करना है। पारमात्मा आपको पहलेसे ही मिला हुआ है और संसार पहलेसे ही आपसे अलग है। अभी आपकी उम्रके जितने वर्ष बीते हैं, उतने वर्ष शरीर आपसे अलग हो गया, और प्रतिक्षण अलग हो रहा है। जैसे शरीर स्वतः अलग हो रहा है, ऐसे आप परमात्माके साथ स्वतः अभिन्न हो रहे हैं। केवल अपने-आपको सब जगह परिपूर्ण उस परमात्मामें छोड़ दें।

आप परमात्माके अंश हैं—***'ईस्वर अंस जीव अबिनासी'*** और परमात्मासे अभिन्न हैं। *'सहज साधना'* पुस्तकमें आया है—

'प्रकृतिके सम्बन्धके बिना तत्त्वका चिन्तन, मनन आदि नहीं हो सकता। अतः तत्त्वका चिन्तन करेंगे तो चित्त साथमें रहेगा, मनन करेंगे तो मन साथमें रहेगा, निश्चय करेंगे तो बुद्धि साथमें रहेगी, दर्शन करेंगे तो दृष्टि साथमें रहेगी, श्रवण करेंगे तो श्रवणेन्द्रिय साथमें रहेगी, कथन करेंगे तो वाणी साथमें रहेगी। ऐसे ही 'है' को मानेंगे तो मान्यता तथा माननेवाला रह जायगा और 'नहीं' का निषेध करेंगे तो निषेध करनेवाला रह जायगा। कर्तृत्वाभिमानका त्याग करेंगे तो 'मैं कर्ता नहीं हूँ'—यह सूक्ष्म अहंकार रह जायगा अर्थात् त्याग करनेसे त्यागी (त्याग करनेवाला) रह जायगा। इसलिये न मान्यता करें, न निषेध करें; न ग्रहण करें, न त्याग करें, प्रत्युत जैसे हैं, वैसे रहें अर्थात् 'है' में स्थिर होकर बाहर-भीतरसे चुप हो जायँ।'

तात्पर्य है कि वृत्तिसे परमात्मामें न लगकर अपने-आपको ही परमात्माके अर्पण कर दें। केवल

यह मान लें कि मैं परमात्मामें ही हूँ। मन-बुद्धि न लगाकर अपने-आपको ही परमात्मामें मान लें। वास्तवमें यह बात पहलेसे ही है। अपने-आपको परमात्मामें छोड़ दिया—यही शरणागति है। मन-बुद्धि-इन्द्रियोंसे नहीं, प्रत्युत स्वयंसे ही भगवान्‌के शरण हो जायँ कि 'मैं भगवान्‌का हूँ, भगवान् मेरे हैं। मैं और किसीका नहीं हूँ, मेरा कोई और नहीं है'।

श्रोता—अपने-आपको भगवान्‌में न मिलाकर अपने-आपको उनका दास मान लें तो?

स्वामीजी—दोनों एक ही बात है। चाहे अपने-आपको भगवान्‌में मिला दो, चाहे अपने-आपको भगवान्‌का दास मान लो। जैसा आपको ठीक लगे, वैसा कर लो। दोनोंका फल एक ही होगा। आपको दास होना समझमें आये तो दास होकर भगवान्‌में मिल जाओ।

श्रोता—दास होकर भगवान्‌में कैसे मिलें?

स्वामीजी—ऐसा स्वीकार कर लो कि मैं केवल भगवान्‌का हूँ और केवल भगवान् मेरे हैं। मेरेको भगवान्‌से कुछ भी नहीं चाहिये। अपने-आपको भगवान्‌के चरणोंमें समर्पित कर दो। अपने-आपको खो दो कि मैं हूँ ही नहीं, केवल भगवान् ही हैं। मेरी जगह भगवान् आ गये! पहले ऐसा स्वीकार कर लो, फिर अनुभव हो जायगा।

बड़ी सुगम बात यह है कि सत्ता अथवा होनापन एक ही है। ऐसा स्वीकार कर लो कि उस एक सत्तामें मैं मिल गया!

द्वैत-अद्वैतमें कोई फर्क नहीं है। आप अपनी धारणासे द्वैत मानकर साधन करो या अद्वैत मानकर साधन करो, अन्तमें एक ही फल होगा। आप अपनेको दास मानकर साधन करो तो भी ऐसा मानो कि मेरी जगह भगवान् ही आ गये! मैं दास्यभावसे भगवान्‌में मिल गया। भगवान्‌के सिवाय मेरा कुछ नहीं है और मेरेको कुछ नहीं चाहिये।

मैं आपको सुगम-से-सुगम बात बताता हूँ। मेरी एक धुन रही है कि परमात्मतत्त्व सबको सुगमतासे और जल्दी कैसे प्राप्त हो। वह धुन अभीतक है! सत्तावाली बात बहुत बढ़िया है! सत्ता एक है, पर साथमें आपके मन-बुद्धि रहते हैं। इसमें बढ़िया बात यह है कि वास्तवमें आप मन-बुद्धिसे रहित हैं। कारण कि आप परमात्माके अंश हैं। अत: मन-बुद्धि आदि सब छोड़ करके अपने-आपको भगवान्‌के चरणोंमें लीन कर दो। उस सत्तामें अपनी सत्ता मिला दो। मन-बुद्धि-इन्द्रियोंको साथमें मत लो; क्योंकि ये सब प्रकृतिके हैं। प्रकृतिका सहारा मत लो। प्रकृतिके सहारेसे कल्याण नहीं होगा। अपने-आपको भगवान्‌के अर्पित कर दो कि 'हे नाथ! मैं आपका हूँ'। खास बात है कि भगवान् ही हैं, मैं हूँ ही नहीं। भगवान् हैं तो आप नहीं हो और आप हो तो भगवान् नहीं हैं।

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाहिं।
प्रेम-गली अति साँकरी, तामें दो न समाहिं॥

इसमें कोई कठिनता दीखे तो पूछो। कठिनता नहीं दीखे तो स्वीकार कर लो। आपसे कुछ न हो सके तो अपने-आपको भगवान्‌के चरणोंमें समर्पित कर दो। फिर सब भगवान् स्वयं करेंगे।

श्रोता—आप कौन-सा साधन करते हैं, और कैसे करते हैं?

स्वामीजी—हम यही करते हैं! सब साधन आपको क्या बतायें! मैंने कई तरहका साधन किया है। उम्र बीत गयी है! आभ्यन्तरदृश्यानुविद्ध, आभ्यन्तरशब्दानुविद्ध, बाह्यदृश्यानुविद्ध, बाह्यशब्दानुविद्ध आदि सभी समाधियोंको मैंने किया है। मैं वही बात कहता हूँ, जो मेरेको आपलोगोंके लिये सुगम दीखती

है। अपनी दृष्टिसे वही साधन बताता हूँ, जो आप कर सकें। आभ्यन्तरदृश्यानुविद्ध आदिकी बात आपको कहूँगा तो आपके आफत हो जायगी! मैंने जो किया है, वह आपके लिये कठिन पड़ेगा! क्योंकि मैंने पढ़ाई की है और उसके अनुसार साधन किया है। मैं हूँ ही नहीं, भगवान् ही हैं। मेरी जगह भगवान् ही आ गये। सत्ता (होनापन) एक ही है। यह सुगम है।

आपको एक बात बतायें, **कभी किसीसे ऐसा नहीं पूछना चाहिये कि तुमने क्या साधन किया है? यह असभ्यता है!** तुम्हारे पास कितने पैसे हैं और कहाँ रखे हैं, बताओगे? क्या यह पैसोंसे भी रद्दी चीज है! अतः ऐसा पूछना उचित नहीं है। यह साधकका प्रश्न नहीं है। यह परीक्षा लेनेवाला प्रश्न है! मैं तो सरलतासे कहता हूँ कि आप भले ही मेरी परीक्षा ले लो! मैं बता दूँगा, पर आपकी समझमें नहीं आयेगा!

*** *** ***

श्रोता—भगवान्का दर्शन करनेकी इच्छा है, कैसे होंगे?

स्वामीजी—ऐसी लगन लगाओ कि दर्शनके बिना रहा न जाय! दर्शनके बिना जी न सको! जैसे प्यासा आदमी जलके बिना रह नहीं सकता, भूखा आदमी अन्नके बिना रह नहीं सकता, ऐसे ही भगवान्के दर्शनके बिना रह नहीं सकें। मामूली इच्छासे भगवान् दर्शन नहीं देते। गीतामें लिखा है—‘**देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकाङ्क्षिणः**’ (गीता ११। ५२) ‘देवता भी इस रूपको देखनेके लिये नित्य लालायित रहते हैं।’

श्रोता—गर्भस्थ भ्रूणमें जीवात्माका प्रवेश कौन-से महीनेमें होता है?

स्वामीजी—आरम्भसे ही होता है। जीव पुरुषके वीर्यमें जन्तुरूपसे आता है। वीर्यमें लाखों जन्तु होते हैं।

*** *** ***

श्रोता—आप कहते हैं कि परमात्माका भी चिन्तन नहीं करना है। परमात्मामें स्थित हो जाओ। हमने भजन-साधन, नित्य-नियम करना छोड़ दिया तो क्या यह ठीक है?

स्वामीजी—छोड़ना ठीक नहीं है। आप भजन-स्मरण करते रहो। प्रकृतिके सम्बन्धसे जो चिन्तन होता है, उससे प्रकृतिका सम्बन्ध जल्दी छूटता नहीं। आप मनको, बुद्धिको, प्राणोंको लगाओगे तो प्रकृतिका सम्बन्ध छूटेगा नहीं। प्रकृतिका सम्बन्ध छूटता है अपने-आपको भगवान्के समर्पित करनेसे। परन्तु इस बातको पकड़े बिना अपना साधन छोड़नेसे बहुत बड़ी गल्ती हो जायगी! डूब जाओगे!

आपको ऊपर चढ़ना हो तो एक-एक सीढ़ी छोड़ोगे, तभी ऊपर पहुँचोगे। अगर एक ही सीढ़ीपर खड़े रहोगे तो ऊपर कैसे पहुँचोगे? आप अगली सीढ़ी पकड़कर फिर पिछली सीढ़ी छोड़ते हो। अगली पकड़ी नहीं और पिछली छोड़ दी तो क्या दशा होगी? दोनों तरफसे जाओगे! मैं चाहता हूँ कि बहुत जल्दी कल्याण हो जाय, परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति हो जाय। अगली बात पकड़े बिना पहला साधन छोड़ दोगे तो पतन हो जायगा!

प्रकृतिका आश्रय छोड़कर स्वयं भगवान्के चरणोंके शरण हो जाओ कि ‘हे नाथ! मैं आपका हूँ’। यह करणनिरपेक्ष साधन है। करण साथमें रहेगा तो बहुत देरी लगेगी। भगवान्में मन-बुद्धि-इन्द्रियाँ लगाना भी ठीक है, पर इसमें देरी लगेगी। आप स्वयं लग जाओ तो मन-बुद्धि-इन्द्रियाँ अपने-आप लग जायँगी। इस बातको पकड़नेकी मुख्यता है, छोड़नेकी मुख्यता नहीं है। पहले आगेकी सीढ़ीपर पैर रखो, फिर पीछेकी सीढ़ी छोड़ो, तभी ऊँचा चढ़ोगे। **मैं चाहता हूँ कि आप सब-के-सब जीवन्मुक्त हो जाओ, तत्त्वज्ञ**

हो जाओ। इसलिये कहता हूँ कि आप स्वयं भगवान्‌में लग जाओ कि 'हे नाथ! मैं आपका हूँ'।

मन-बुद्धि लगाना करणसापेक्ष साधन है। करणसापेक्ष साधन करनेवाला ही योगभ्रष्ट होता है; क्योंकि वह मन लगाता है, और मनके विचलित होनेपर योगभ्रष्ट होता है—'**योगाच्चलितमानसः**' (गीता ६। ३७)। परन्तु करणनिरपेक्ष साधन करनेवाला योगभ्रष्ट नहीं होता; क्योंकि वह स्वयं लगता है। कितनी विलक्षण बात है! इसलिये मैं कहता हूँ कि आप स्वयं भगवान्‌में लग जाओ। मन-बुद्धि लगानेसे देरी लगेगी, और स्वयं लग जाओगे तो बहुत जल्दी काम हो जायगा! मैं छोड़नेकी बात नहीं कहता, प्रत्युत ऊँची बात पकड़नेके लिये कहता हूँ। 'हे केवल भगवान्‌का हूँ और केवल भगवान् ही मेरे हैं'—इस प्रकार स्वयं लगनेसे बहुत जल्दी काम बनेगा।

श्रोता—भगवान्‌के लिये रोना, 'हे नाथ! हे नाथ!' पुकारना क्या करण-निरपेक्ष साधन है?

स्वामीजी—यह करण-निरपेक्ष हुआ नहीं है, पर हो जायगा। मन-बुद्धिको न लगाकर आप स्वयं भगवान्‌में लग जाओ कि मैं भगवान्‌का हूँ। मन-बुद्धि लगाओगे तो प्रकृतिका सम्बन्ध जल्दी छूटेगा नहीं; क्योंकि मन-बुद्धि प्रकृतिके हैं।

कन्या ससुरालकी हो जाती है तो पीहरके साथ एकदम सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है। उसका गोत्र बदल जाता है। वह दादी-परदादी बन जाती है तो पीहरकी बात याद ही नहीं रहती। जब पोतेका विवाह होता है और बहू आकर घरमें खटपट मचाती है तो बूढ़ी माँ कहती है कि इस परायी जायी छोकरीने आकर मेरा घर बिगाड़ दिया! अब उस बूढ़ी माँसे कोई पूछे कि यह तो परायी जायी है, पर आप क्या यहीं जन्मी थीं? उसको याद ही नहीं कि मैं भी तो परायी जायी हूँ! आज बहूको भले ही परायी जायी कह दो, पर एक दिन यह घर भी उसका हो जायगा। इस तरह आप स्वयंको बदल दो तो सब ठीक हो जायगा।

श्रोता—मन-बुद्धिके द्वारा ही तो एकताका अनुभव करते हैं; स्वयंसे स्थित कैसे हों?

स्वामीजी—कन्या ससुरालमें मन लगाती है या स्वयं लगती है? जैसे वह खुद लगती है, ऐसे आप खुद भगवान्‌में लगो। बहुत जल्दी काम बनेगा! मीराबाईने कह दिया—***'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई'***। विवाह होता है तो आपका होता है या मनका अथवा बुद्धिका? आप यही मानते हो कि मेरा विवाह हो गया। ऐसे ही आप खुद भगवान्‌के हो जाओ तो बहुत जल्दी काम बनेगा। मैं, तू, यह और वह—चारों ही छूट जायँगे।

एक हम जप करें और एक हम भगवान्‌के हो जायँ—दोनोंमें भगवान्‌का होना जितना दामी है, उतना जप करना दामी नहीं है। रामजी खुद भरतजीके नामका जप करते हैं—

भरत सरिस को राम सनेही। जगु जप राम रामु जप जेही॥

(मानस, अयोध्या० २१८। ४)

'सारा जगत् रामजीको जपता है, वे रामजी जिनको जपते हैं, उन भरतजीके समान रामजीका प्रेमी कौन होगा?'

गोस्वामीजीने साफ कहा है—

बिगरी जनम अनेक की सुधरै अबहीं आजु।
होहि राम को नाम जपु तुलसी तजि कुसमाजु॥

(दोहावली २२)

भगवान्‌का होकर भगवान्‌के नामका जप करो तो अनेक जन्मोंकी बिगड़ी हुई बात आज और अभी सुधर सकती है। परन्तु मनुष्य उम्रभर नाम-जप करते हैं, पर भगवान्‌के नहीं होते, संसारके ही रहते हैं! इसलिये आप भगवान्‌के हो जाओ, सब जगह परिपूर्ण भगवान्‌में अपने-आपको मिला दो, उनके चरणोंके शरण हो जाओ।

*** *** ***

श्रोता—आप कहते हैं कि सबकी स्थिति 'है' में है, तो उसमें स्वाभाविक स्थिरता कैसे हो?

स्वामीजी—पहले हरेक भाई-बहनको यह बात दृढ़तासे मान लेनी चाहिये कि परमात्मा स्वत:-स्वाभाविक सबमें परिपूर्ण हैं। जैसे समुद्रमें समान रीतिसे जल भरा हुआ रहता है, ऐसे परमात्मा सब संसारमें समान रीतिसे भरे हुए हैं। संसारमें तो परिवर्तन होता है, पर परमात्मामें परिवर्तन नहीं होता। जगत् तो बदलता है, पर परमात्मा नहीं बदलते। परमात्मा बाहर-भीतर सबमें परिपूर्ण हैं—यह दृढ़तासे माननेके बाद फिर ऐसा मानो कि हमारी सत्ता भी हरदम उस परमात्माके अन्तर्गत स्वभाविक स्थित है। हमारी सत्ता उस सत्तासे अलग नहीं है। ज्ञानी हो या अज्ञानी, समझदार हो या बेसमझ, सबकी स्थिति समान रीतिसे उसीमें ही है। ऐसा दृढ़तासे स्वीकार करके उसमें स्थित (चुप) हो जाओ तो आपको स्वत:-स्वाभाविक एक शक्ति मिलेगी। उस शक्तिसे आपकी सांसारिक भोगोंके सुखसे अरुचि हो जायगी। आपमें स्वाभाविक ही उस सुखके त्यागकी ताकत आयेगी। आधा मिनट तो क्या कहें, दो-चार सेकेण्ड भी उसमें स्थित हो जाओ तो आपमें शक्ति आयेगी।

सबसे पहले आपको भगवान्‌की सत्ता माननी होगी। वह दृढ़तासे मान लोगे तो आगे बड़ी सुगमता हो जायगी। उसमें अपनी स्थितिका अनुभव सुगमतासे हो जायगा।

श्रोता—परमात्मामें अपनेको मिलाना क्या है, और कैसे मिलायें?

स्वामीजी—मैं हूँ ही नहीं अर्थात् मैं-पना है ही नहीं। परमात्मामें मैं, तू, यह और वह—ये चारों ही नहीं हैं। एक 'मैं' होनेके कारण ही तू, यह और वह होता है। एक मैं-पना छोड़ दोगे तो मैं-तू-यह-वह चारों नहीं रहेंगे। जैसे गंगाजीमें स्नान करते समय डुबकी लगाते हैं, इस तरह भगवान्‌में डुबकी लगा लो। मैं-पना भगवान्‌के अर्पण कर दो कि भगवान् हैं, 'मैं' नहीं है।

संसारमें खिंचाव मैं-पनके कारण ही होता है। मैं-पनको छोड़ दो तो खिंचाव मिट जायगा।

*** *** ***

श्रोता—आप कहते हैं कि सब मनुष्योंमें एक ही परमात्मा हैं। तो फिर एक मनुष्य सन्त बनता है, दूसरा डाकू बन जाता है, ऐसा क्यों?

स्वामीजी—कारण कि सबकी प्रकृति अलग-अलग होती है। करोड़ों मनुष्य हों तो उनमें दो मनुष्योंकी प्रकृति भी परस्पर एक समान नहीं होती। अगर बने कुछ नहीं तो सब एक हैं। बननेसे बनावटीपना आ जाता है। बनावटीपनेमें सब अलग-अलग हो जाते हैं।

आपने अपने-आपको पकड़ रखा है—यही दोष है। अपने-आपको छोड़ दो तो सब ठीक हो जायगा।

*** *** ***

एक नयी बात है! जो भगवान्‌को भी नहीं मानता और अपने स्वरूप (आत्मा)-को भी नहीं मानता, केवल संसारको सच्चा मानता है, वह भी अगर अपना उद्धार चाहे तो कर्मयोगके द्वारा अपना उद्धार कर सकता है। निष्कामभावसे दूसरोंकी सेवा करनेसे उसका भी कल्याण हो जाता है। यह बात मैंने विशेष नहीं कही है। इसका वर्णन शास्त्रोंमें बहुत कम आता है। नास्तिक-से-नास्तिक भी अपनी कामना-

आसक्तिका त्याग करके सेवामें लग जाय तो उसका भी कल्याण हो जायगा। कामना ही संसारमें फँसानेवाली है।

*** *** ***

श्रोता—हम तो भगवान्‌से यही चाहते हैं कि हम भगवान्‌का नाम लेते रहें, कीर्तन करते रहें। हमें तत्त्वज्ञान नहीं चाहिये, मुक्ति भी नहीं चाहिये। क्या यह रास्ता ठीक है?

स्वामीजी—बात तो ठीक है, पर दूसरी चाहना मिटनी चाहिये। धनकी और भोगोंकी इच्छा बाधक है। ये दो इच्छाएँ मिटाये बिना काम नहीं चलेगा। कोई भी इच्छा न हो, जीनेकी भी इच्छा न हो और नाम लेते रहें।

मैंने दो बातें आपसे कही हैं—१) एक भगवान्‌के सिवाय हमारा कुछ नहीं है और २) हमारेको कुछ नहीं चाहिये। हमारा स्वरूप क्या है? हमारा स्वरूप है—***'ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी॥'***। अब हमें क्या चाहिये? ***'ईस्वर अंस'*** के लिये क्या चाहिये? ***'अबिनासी'*** के लिये क्या चाहिये? ***'चेतन'*** के लिये क्या चाहिये? ***'अमल'*** के लिये क्या चाहिये? ***'सहज सुख रासी'*** के लिये क्या चाहिये? आप अपनेको शरीर मानो तो शरीरके लिये रोटी चाहिये, जल चाहिये, कपड़ा चाहिये, मकान चाहिये, औषध चाहिये, कई चीजें चाहिये। परन्तु आप शरीर नहीं हो। शरीर मिला है और बिछुड़ जायगा। जो मिलती है और बिछुड़ती है, वह चीज अपनी नहीं होती—यह नियम है। अतः हमारे लिये कुछ नहीं चाहिये। हमारे लिये केवल भगवान् चाहिये। भगवान् सदासे ही मिले हुए हैं और कभी बिछुड़ते हैं ही नहीं। अतः अपने-आपको भगवान्‌में मिला दे, भगवान्‌के चरणोंके समर्पित कर दे, बस! मौज हो जायगी! फिर आप नामजप करते रहो। सब एकदम ठीक हो जायगा!

श्रोता—जैसे श्रद्धेय गुरुजनोंका, श्रेष्ठ महापुरुषोंका नाम नहीं लिया जाता, ऐसे ही भगवान्‌में अत्यन्त श्रद्धा होनेसे उनका नाम लेनेमें भी हमें संकोच होता है!

स्वामीजी—नाम भले ही मत लो, पर भगवान्‌में प्रेम नहीं घटना चाहिये—

नहीं रट्या तो का भया, घट्या न चाहिय हेत।
जैसे नार सुहागणी, पिव को नाम न लेत॥

स्त्री अपने पतिका नाम नहीं लेती तो क्या पति दूसरा हो गया? वह पतिका नाम तो नहीं लेती, पर पतिको अपना मानती है। आजकलकी बात मैं नहीं कहता। आजकल तो कलियुग है, इसलिये सब बातें उल्टी ही हो रही हैं!

धनि कलियुग महराज आपने लीला अजब दिखाई है।
उलटा चलन चला दुनियाँ में सबकी मति बौराई है॥

भगवान्‌का नाम न लो तो कोई हर्ज नहीं है, पर भगवान्‌को अपना मानो। जो भगवान्‌का नाम तो रटता है, पर उनको अपना नहीं मानता, उसका कल्याण जल्दी नहीं होता। वास्तवमें भगवान्‌के समान अपना कोई है ही नहीं। उनका नाम लो चाहे मत लो, पर उनको अपना मानो।

एक राजा थे। वे भगवान्‌के बड़े भक्त थे। उनका विवाह जिस लड़कीसे हुआ, वह भी भगवान्‌की भक्त थी। उस लड़कीके मनमें यह बात भी कि मेरे पति भी भगवान्‌का नाम लेनेवाले हों। पर वह राजा कभी भगवान्‌का नाम नहीं लेता था। इससे वह बड़ी दुःखी रहती थी। एक दिन प्रातः उठनेके बाद उस पत्नीने बड़ा उत्सव किया और ब्राह्मणोंको बुलाया, सबको भोजन कराया। राजाने पूछा कि

आज किस खुशीमें यह उत्सव कर रही हो? उसने कहा कि आज रात नींदमें आपके मुखसे भगवान्‌का नाम निकला, इसलिये मैं बहुत खुश हूँ! राजाने कहा कि नाम निकल गया! यह कहते ही राजाके प्राण भी निकल गये! जैसे धनको छिपाकर रखते हैं, ऐसे राजाने नामको छिपाकर रखा था! अतः **नाम लेना कोई बड़ी चीज नहीं है, भगवान्‌को अपना मानना बड़ी चीज है। चाहे नाम लेकर अपना मानो, चाहे नाम न लेकर अपना मानो, जैसी आपकी मरजी!**

हमने ऐसे भक्त साधु भी देखे हैं। हमारे सहपाठी चिम्मनरामजी थे। वे बहुत नामजप किया करते थे। एक बार वे भगवान्‌से रूठ गये कि अब भगवान्‌का नाम नहीं लेंगे! उनको कोई नाम सुनाता तो वे चिढ़ जाते! वे बीमार थे तो बुलानेपर मैं रतनगढ़ गया। स्टेशनपर चक्रधरजी आये तो मेरेसे कहा कि उनके आगे भगवान्‌का नाम मत लेना, नहीं तो वे चिढ़ जायँगे! मृत्युसे एक-दो दिन पहले चिम्मनरामजीने गोस्वामी चिम्मनलालजीसे कहा कि मेरेको पद सुनाओ—***'जा दिन ते देखे इन नयना, मोहन बाँधे पाग लटपटी। ता दिन ते मोहि अधिक सटपटी'***। यह पद सुनकर बोले कि पहले भगवान्‌से हमारा विरोध था, पर आज भगवान्‌से हमारी सन्धि हो गयी! अगर आप भी ऐसा पक्का विचार कर लो कि आठ पहर भगवान्‌का नाम नहीं लेंगे तो आप रह नहीं सकोगे! आपको बार-बार भगवान्‌की याद आयेगी! जबर्दस्ती याद आयेगी!

सेवा सबकी करो, पर भीतरसे यह बात पक्की रखो कि केवल भगवान् अपने हैं। सिवाय भगवान्‌के हमारा कोई नहीं है, कभी नहीं है। पर सेवा करनेके लिये सब हमारे हैं।

*** *** ***

श्रोता—एक व्यक्ति नामजप करता है और दूसरा व्यक्ति अपने विवेकका आदर करता है, दोनोंमें कौन श्रेष्ठ है?

स्वामीजी—वास्तवमें दोनोंकी परस्पर तुलना नहीं की जा सकती; क्योंकि विवेक दोनोंमें है। जो नामजप करता है, उसके द्वारा स्वतः विवेकका आदर होगा। कारण कि नामजप करनेवालेमें स्वतः-स्वाभाविक विवेक जाग्रत् होता है।

जो भगवान्‌में लगा हुआ है, वह बहुत श्रेष्ठ होगा। उसमें सब गुण स्वतः आ जाते हैं—***'जिमि सदगुन सज्जन पहिं आवा'*** (मानस, किष्किन्धा० १४। ४)। **एक नामजप करता है और ठगाई भी करता है और दूसरा नामजप नहीं करता और ठगाई नहीं करता तो संसारमें ठगाई न करनेवालेको लोग श्रेष्ठ कहेंगे। परन्तु अन्तमें नामजप करनेवाला श्रेष्ठ निकलेगा! जिसने किसी भी तरहसे भगवान्‌का आश्रय लिया है, वह सबसे तेज होगा।**

नामजप भगवान्‌में लगानेका साधन है। यही बादमें साध्य हो जाता है।

*** *** ***

श्रोता—नामजप साधन और साध्य—दोनों कैसे?

स्वामीजी—नाम और रूप—ये दोनों ही ईश्वरके स्वरूप हैं। हरेक वस्तुका एक नाम होता है। नामसे उसकी पहचान होती है। परमात्मप्राप्तिके विषयमें नामकी महिमा रूपसे भी अधिक है। नामका जप करते हुए रूप अपने-आप आ जायगा। शास्त्रने नाममें अचिन्त्य शक्ति मानी है। अनादिकालसे अज्ञानरूपी नींदमें पड़ा हुआ मनुष्य गुरुके शब्दसे जाग्रत् हो जाता है।

शब्दशक्तेरचिन्त्यत्वात् शब्दादेवापरोक्षधीः।
प्रसुप्तः पुरुषो यद्वत् शब्देनैवावबुध्यते॥

'शब्दमें अचिन्त्य शक्ति होनेके कारण जैसे सोया हुआ मनुष्य शब्दमात्रसे जग जाता है, ऐसे ही परमात्मतत्त्व भी शब्दमात्रसे प्रत्यक्ष हो जाता है।'

नाम और नामीमें अभेद होता है अर्थात् स्वरूपसे दोनों एक ही होते हैं। अतः स्वरूपका ध्यान करनेवाला जिस तत्त्वको प्राप्त होता है, उसी तत्त्वको नामजप करनेवाला भी प्राप्त होता है। अतः साधन भी नाम है और साध्य भी नाम है। नामके बिना हम किसको प्राप्त करेंगे?

श्रोता—तत्त्व तो अक्रिय है, और जप, कीर्तन आदि क्रियाएँ हैं, फिर इनसे अक्रिय तत्त्व कैसे प्राप्त होगा?

स्वामीजी—कोई नामजप करता है तो वह क्रिया करता है या भगवान्‌को देखता है? नाम लेते हुए वह चिन्तन क्या करता है? उसका उद्देश्य क्या है? उसका उद्देश्य परमात्मा है तो वह परमात्माको प्राप्त होगा।

आपका भाव भगवान्‌का चाहिये। आप कोई काम करो, भगवान्‌के लिये करो तो वह सब-की-सब भक्ति हो जायगी।

श्रोता—ममता, कामना, आसक्ति आदि क्या कभी-कभी महापुरुषोंमें भी आ जाती है?

स्वामीजी—तत्त्वज्ञ, जीवन्मुक्त महापुरुषमें नहीं आती। महात्मा सर्वथा शुद्ध, निर्मल होते हैं। उनमें काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि दोष नहीं होते। इतना ही नहीं, महात्माओंको याद करनेसे दोष दूर हो जाते हैं! उनके पास रहनेसे विकार दूर हो जाते हैं!

एक सिद्धान्त है कि कोई भी मनुष्य सर्वथा बुरा हो सकता ही नहीं, पर सर्वथा भला (निर्मल) हो सकता है। सत्संगमें रहनेसे स्वाभाविक भाव शुद्ध होते हैं। सत्संग करते हुए आदमीका भाव दूसरा होता है और घरमें या दूकानमें बैठे आदमीका भाव दूसरा होता है—यह प्रत्यक्ष बात है, जिसका सब अनुभव करते हैं। मनुष्य कितनी ही आफतमें हो, सत्संगमें आनेसे शान्ति मिल जाती है। भगवान्‌की चर्चामें शान्ति है! भगवत्सम्बन्धी बातोंमें शान्ति है! हम कैसे ही हों, भगवान्‌की चर्चा करते समय शुद्ध, निर्मल हो जाते हैं!

श्रोता—सत्संगमें जानने-माननेकी बातें होती हैं, पर भगवान्‌के दर्शनकी बात नहीं होती! भगवान्‌के दर्शन होने चाहिये!

स्वामीजी—दर्शन हो जायँ—यह तो पूरा पता नहीं है, पर आप सब-के-सब भगवान्‌के भक्त हो सकते हैं। आप हिम्मत करो। आप मामूली नहीं हो। ये सत्संग करनेवाले संसारके आदमियोंसे विलक्षण हैं! आप सब भगवद्भक्त हो सकते हैं, महात्मा हो सकते हैं। मैं जानने और माननेकी बात भी कहता हूँ और देखनेकी बात भी कहता हूँ। '**वासुदेवः सर्वम्**'—यह देखनेकी बात है!

सत्संगकी जड़ होती है, पर कुसंगकी जड़ नहीं होती। जितनी अशुद्ध प्रवृत्ति है, उसकी जड़ नहीं है।

निंदक तू गल जावसी, ज्यूँ पानीमें लूण।
कबीर थारे राम रुखालो, निंदक थारे कूण॥

जड़वाला पनपेगा, पर बिना जड़वाला मुरझा जायगा!

***   ***   ***

श्रोता—मैं शरीरसे असंग होना चाहता हूँ। इसमें आगे बढ़नेके लिये युक्तियाँ बतानेकी कृपा करें।

स्वामीजी—आप असंग होना चाहते हैं, पर वास्तवमें आप असंग हैं। यह बात आप पहले ही मान लो। कुछ करनेसे हम असंग होंगे—ऐसी बात नहीं है। आप सभी पहलेसे ही असंग हैं। उपनिषद्‌में आता है—**'असङ्गो ह्ययं पुरुषः'** (बृहदारण्यक० ४। ३। १५-१६) **'यह पुरुष (जीव) असंग है'**। आपको केवल गुणोंका संग छोड़ना है। कारण कि गुणोंका संग ही बाँधनेवाला है। गीतामें आया है—

कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु॥

(गीता १३। २१)

'गुणोंका संग ही जीवके ऊँच-नीच योनियोंमें जन्म लेनेका कारण बनता है।'

यह गुणोंका संग कृत्रिम है, बनावटी है। यह आपके साथ है नहीं। इसलिये यह छूटनेवाला है। आपका पक्का विचार हो जाय कि गुणोंका संग नहीं करना है तो यह छूट जायगा। कारण कि आपकी असंगता स्वत:सिद्ध है। आप सदा ही असंग हैं। आपकी असंगता गुणोंके संगसे दब जाती है, पर मिटती नहीं। कितना ही गुणोंका संग हो जाय, कितनी ही अधोगतिमें चले जायँ तो भी आपकी असंगता मिटेगी नहीं, पर उसका अनुभव नहीं होगा।

आपकी वृत्ति कभी सात्त्विक हो, कभी राजसी हो, कभी तामसी हो, तो ये वृत्तियाँ बदलनेवाली हैं। ये आपका स्वरूप नहीं हैं। परन्तु असंगता रहनेवाली है, बदलनेवाली नहीं है। आप गुणोंका संग न करें अर्थात् खाना-पीना, उठना-बैठना, जाना-आना आदि सबके साथ निर्लेप रहें, उनमें घुले-मिले नहीं। उनके साथ घुल-मिल जाते हैं तो बाधा लग जाती है।

एक घुल-मिलकर भोजन किया जाता है, और एक तटस्थ होकर भोजन किया जाता है। हमारे साथी चिम्मनरामजी कहते थे कि सेठजीके सामने भोजन करनेसे रस नहीं आता! कारण कि सेठजी ऐसे तटस्थ होकर भोजन करते थे, जैसे मशीन चल रही हो!

चिम्मनरामजी बिजलीकी गर्जनासे डरते थे। वे कहते थे कि ऐसा मालूम होता है कि पहले कभी मैं बिजलीसे मरा हूँ, उसके संस्कार भीतर पड़े हुए हैं। जानता हूँ कि डरनेसे कुछ नहीं होगा, फिर भी डर लगता है। वे भागवतके पण्डित थे। भागवतके श्लोक देखते ही उनको तुरन्त कण्ठस्थ हो जाते थे। वे कहते थे कि **मैंने भागवतकी कथा की है, पर मेरा राग नहीं मिटा है। भागवतका मनन करनेपर मनुष्यकी जैसी स्थिति होनी चाहिये, वैसी नहीं हुई है। इससे मालूम होता है कि मैंने पैसोंके लिये कथा की है। असंग होकर, भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये कथा नहीं की है।** वास्तवमें वे पैसे पासमें नहीं रखते थे। नीमाजमें बकरियोंके लिये बबूल इकट्ठा करते तो बिना जूतीके फिरते। कहते थे कि प्रारब्धमें नहीं है तो काँटा नहीं लगेगा। प्रारब्धमें होगा तो लग जायगा। उनको भगवान् श्रीकृष्णकी रासलीला देखनेका बहुत शौक था। रासलीला देखते तो मस्त हो जाते! रासलीला देखकर सो जाते तो नींदमें इतने आँसू आते कि कान भर जाते!

श्रोता—एक जगह पढ़ा है कि विश्वास परमात्मासे भी अधिक महत्त्वकी वस्तु है। कैसे?

स्वामीजी—परमात्मा तो सब जगह व्यापक है, उसका कहीं भी अभाव नहीं है, फिर भी मुक्ति नहीं होती! परन्तु उसपर विश्वास हो जाय, प्रेम हो जाय तो मुक्ति हो जाती है। अत: विश्वास, प्रेम परमात्मासे भी अधिक तेज है! वह विश्वास भगवान्‌की कृपासे प्राप्त होता है।

श्रोता—विश्वास भी भगवान्‌की कृपासे होगा, तब उनकी प्राप्ति होगी!

स्वामीजी—होगा नहीं, आप प्रार्थना करो। भगवान्‌से प्रार्थना करो कि अपना विश्वास दो। भगवान्

जरूर देते हैं। भगवान्‌का दिया हुआ विश्वास ही असली विश्वास है। अपना विश्वास उतना होता नहीं। 'हे नाथ! हे नाथ!' कहकर भगवान्‌को पुकारो, विश्वास हो जायगा।

भगवत्प्राप्त महापुरुषके शरणागत होनेसे, उनका संग होनेसे परमात्मा सुलभ हो जाते हैं! जैसे अनन्यचित्तवाले भक्तके लिये भगवान् सुलभ हो जाते हैं—'तस्याहं सुलभः पार्थ' (गीता ८। १४), **ऐसे ही महात्माके मिलनेसे भी परमात्मा सुलभ हो जाते हैं!** सन्त-महात्माके मिलनेसे बहुत विशेष लाभ होता है! जैसे कोई पूँजी दे दे, ऐसे ही सन्त-महात्मा पूँजी दे देते हैं! भगवान्‌की कृपा सम्पूर्ण जीवोंपर रहती है, पर महात्मा मिलते हैं तो उसमें भगवान्‌की विशेष कृपा होती है!

भगवान् प्रसन्न हो जायँ तो कृपा करके मनुष्यशरीर देते हैं—

कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥

(मानस, उत्तर० ४४। ३)

मनुष्यशरीरसे मनुष्य नरकोंमें भी जा सकता है, स्वर्गमें भी जा सकता है और मुक्ति भी प्राप्त कर सकता है। परन्तु महात्मा कृपा करते हैं तो भगवान्‌को दे देते हैं!

हरि से तू जनि हेत कर, कर हरिजन से हेत।
हरि रीझै जग देत हैं, हरिजन हरि ही देत॥

महात्माओंकी कृपासे कल्याण ही होता है, स्वर्ग-नरक नहीं होते। अगर सन्त-महात्मा मिल जाय तो बहुत बढ़िया है! सरलतासे उनकी बात मान लो। उनकी बातके अनुसार चलना बड़ी भारी सेवा है!

आप पहाड़में जाकर दिनभर खूब मेहनत करो, पर एक कौड़ी भी नहीं मिलेगी। परन्तु खेतमें जाकर किसी मालिकके कहनेसे काम करो तो रुपये मिलेंगे। ऐसे ही साधक महात्माकी आज्ञाके अनुसार तत्परतासे भजनमें लग जाय तो भजनका माहात्म्य तो होगा ही, पर उनकी आज्ञासे लगनेपर एक विशेष शक्ति आती है, बड़ी भारी सहायता मिलती है, जिससे बहुत जल्दी काम होता है!

भगवान् जिसपर कृपा करते हैं, उसको सन्त मिलते हैं—

संत बिसुद्ध मिलहिं परि तेही। चितवहिं राम कृपा करि जेही॥

(मानस, उत्तर० ६९। ७)

भगवान् कृपा करते हैं तो सत्संग मिलता है, और सत्संगसे प्राणीका कल्याण हो जाता है।

आप भगवान्‌में लग जाओ और बार-बार प्रार्थना करो कि 'हे नाथ! हे मेरे नाथ! हे मेरे स्वामिन्! मैं आपको भूलूँ नहीं। हे नाथ! हे मेरे प्रभो! ऐसी कृपा करो कि मैं आपको भूलूँ नहीं'। यह बड़ी भारी सेवा है!

अभी मौका है! आप चेत करो तो बहुत सुन्दर अवसर आया हुआ है! 'मरी' (महामारी) और 'तरी' (खुशहाली) हरदम नहीं रहती, कभी-कभी आती है! इसलिये सच्चे हृदयसे भगवान्‌में लग जाओ। आपलोगोंसे प्रार्थना है कि चलते-फिरते, उठते-बैठते हरदम भगवान्‌को पुकारो 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। 'हे नाथ! मेरी एक ही माँग है कि आपको भूलूँ नहीं'। सब काम एकदम ठीक हो जायगा! भगवान् यादमात्र करनेसे प्रसन्न हो जाते हैं—'**अच्युतः स्मृतिमात्रेण**'। माता कुन्तीने भगवान् कृष्णसे कहा कि 'कन्हैया, ये पाण्डव तेरे भाई हैं, और दुःख पा रहे हैं!' भगवान् बोले कि 'माँजी, मैं क्या करूँ, द्रौपदीका चीर खींचा गया तो उसने मेरेको याद कर लिया; परन्तु युधिष्ठिरने अपना सब कुछ दाँवपर

लगा दिया, पर मेरेको याद ही नहीं किया! कम-से-कम मेरेको याद कर लेते, बस।' कितनी सुगम बात है! भगवान्‌की स्मृति सम्पूर्ण विपत्तियोंका नाश करनेवाली है—**'हरिस्मृतिः सर्वविपद्विमोक्षणम्'** (श्रीमद्भा० ८। १०। ५५)। इसमें क्या खर्चा लगता है! क्या परिश्रम होता है!

*** *** ***

श्रोता—प्रतिकूलता आती है तो वह सही नहीं जाती, क्या करें?

स्वामीजी—प्रतिकूलता सहनेमें कठिन होती है, बात तो ठीक है; परन्तु प्रतिकूलतासे फायदा होता है, नुकसान नहीं होता। नुकसान अनुकूलतासे होता है। अनुकूलतासे भोगेच्छा बढ़ती है, आराम बढ़ता है। प्रतिकूलतासे पुराने पाप कटते हैं, अन्त:करण शुद्ध होता है और आगे सावधानी होती है। इसलिये आप प्रतिकूलताके फायदेकी तरफ देखो। दवाई जीभमें कड़वी लगनेपर भी शरीरको ठीक करती है, इसलिये लोग कड़वी दवाई ले लेते हैं। जितने सन्त-महात्मा हुए हैं, उन्होंने प्रतिकूलताको आदर दिया है।

धिन सरणो महराज को, निसिदिन करियै मौज।
रामचरण संसार सुख, दई दिखावै नौज॥

प्रतिकूलतामें घबराना नहीं चाहिये। घबरानेसे प्रतिकूलताका भोग होता है, और सावधान रहनेसे प्रतिकूलताका सदुपयोग होता है। अनुकूलता दीखनेमें अच्छी दीखती है, पर उसका परिणाम अच्छा नहीं होता। प्रतिकूलता दीखनेमें बुरी दीखती है, पर उसका परिणाम अच्छा होता है। बालक पढ़नेसे डरते हैं और छुट्टीके दिन आनन्दसे रहते हैं! पढ़ाई करनेमें उनको कष्ट होता है, पर उसको सह लेनेसे आगे सदाके लिये शान्ति हो जाती है।

गीर्भिर्गुरूणां परुषाक्षराभिस्तिरस्कृता यान्ति नरा महत्त्वम्।
अलब्धशाणोत्कषणान्नृपाणां न जातु मौलौ मणयो वसन्ति॥

(रसगंगाधर)

'जब मनुष्य गुरुजनोंकी कठोर शब्दोंसे युक्त वाणीद्वारा अपमानित किये जाते हैं, तभी वे महत्त्वको प्राप्त होते हैं, अन्यथा नहीं। जैसे, मणि भी जबतक शाणपर घिसकर उज्जवल नहीं की जाती, तबतक वह राजाओंके मुकुटमें नहीं जड़ी जाती।'

जो पढ़ाईमें जितनी कठिनता सहते हैं, वे उतने नामी विद्वान् होते हैं। आज विद्यार्थियोंके लिये आराम ज्यादा कर दिया तो पहले-जैसी विद्या नहीं रही!

सुखार्थी चेत् त्यजेद्विद्यां विद्यार्थी च त्यजेत् सुखम्।
सुखार्थिनः कुतो विद्या कुतो विद्यार्थिनः सुखम्॥

(चाणक्यनीति० १०। ३)

'यदि सुखकी इच्छा हो तो विद्याको छोड़ दे और यदि विद्याकी इच्छा हो तो सुखको छोड़ दे; क्योंकि सुख चाहनेवालेको विद्या कहाँ और विद्या चाहनेवालेको सुख कहाँ?'

श्रोता—ऐसा कोई उपाय है, जिससे जीवनमें प्रतिकूलता आये ही नहीं?

स्वामीजी—नहीं। ऐसी इच्छा नहीं करनी चाहिये। **प्रतिकूलता आये तो आने दो। भगवान्‌से उसको सहनेकी शक्ति माँगो। जिसमें प्रतिकूलता नहीं आये, ऐसा जीवन होता ही नहीं!** किसीका भी जीवन ऐसा नहीं है। प्रतिकूलता न चाहनेपर भी आती है और अनुकूलता चाहनेपर भी चली जाती है। चाहना न सुखकी करनी है, न दु:खकी करनी है। जो आ जाय, उसीमें प्रसन्न रहना है।

अनुकूलताकी इच्छा करना ही पतन है। सुख ही संसारमें बाँधनेवाला है। प्रतिकूलतासे लाभ होता है—यह बात आप याद रखो तो आपको प्रतिकूलतामें दु:ख नहीं होगा। सन्त-महात्मा प्रतिकूलतामें प्रसन्न रहते हैं। जितनी आदत शुद्ध होती है, स्वभाव निर्मल होता है तो वह प्रतिकूलतासे होता है। प्रतिकूलतासे जीवन शुद्ध, निर्मल हो जाता है। जो अच्छे-अच्छे पण्डित होते हैं, वे दु:ख पाये हुए होते हैं।

श्रोता—जीवनमें निर्भयता कैसे प्रकट हो?

स्वामीजी—अपने कर्तव्यपर डटे रहनेसे। सुख आये चाहे दु:ख आये, अपने कर्तव्यका त्याग न करे।

श्रोता—मनुष्यको अपने उद्देश्यकी प्राप्तिके लिये कर्मोंकी प्रधानता रखनी चाहिये या ईश्वर-भक्तिकी?

स्वामीजी—भक्तिकी प्रधानता रखनी चाहिये। भक्तिमें भगवान्‌की सहायता मिलती है। भगवान्‌की कृपासे जो काम होता है, वह बहुत विलक्षण होता है! भगवान्‌की, भक्तोंकी, धर्मकी, पुस्तकोंकी सहायता तो मिलती ही रहती है! गीतामें भी भगवान्‌ने अपना आश्रय लेकर साधन करनेकी बात कही है—'**मामाश्रित्य यतन्ति ये**' (गीता ७। २९)। भगवान्‌का आश्रय लेकर साधन करनेसे अभिमान नहीं आता, नहीं तो अभिमान आ जाता है। इसलिये भगवान्‌का आश्रय, भगवान्‌की भक्ति बहुत बढ़िया है!

श्रोता—मैंने वृन्दावनमें गौड़ीय सम्प्रदायमें दीक्षा ले ली। वे कहते हैं कि केवल महामन्त्रका जप करो, तो मैं केवल महामन्त्रका जप करता हूँ। अब आज्ञा दें कि आगे (इसके अलावा) मुझे क्या करना है?

स्वामीजी—भगवान्‌के शरण हो जाओ। गीताने शरणागतिको सबसे बढ़िया बताया है और इसको 'सर्वगुह्यतम' अर्थात् सबसे अत्यन्त गोपनीय कहा है—'**सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः**' (गीता १८। ६४)। **दुनियामात्रके जितने साधन हैं, उन सबमें सबसे श्रेष्ठ साधन है—भगवान्‌के शरण होना!**

*** *** ***

श्रोता—आपने बताया कि प्रतिकूलतासे पाप कटते हैं। यदि कोई अपने विवेकसे प्रतिकूलतामें दु:खी नहीं हुआ तो क्या उसके पाप कटेंगे?

स्वामीजी—पाप भी कटेंगे और लाभ भी होगा। वह सुख-दु:ख दोनोंसे ऊँचा उठ जायगा। एक 'दु:खका भोग' होता है और एक 'दु:खका सदुपयोग' होता है। दु:खका सदुपयोग उन्नति करता है। परन्तु दु:खके भोगसे उन्नति नहीं होती।

श्रोता—संसारमें सुख और दु:ख दोनों दीखते हैं। इनमें हम फँस जाते हैं। कैसे बचें?

स्वामीजी—प्रभुको 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!' पुकारो। यह स्वीकार कर लो कि मैं प्रभुका हूँ, प्रभु मेरे हैं। मेरा संसारमें कोई नहीं है, मैं किसीका नहीं हूँ। मेरे केवल भगवान् हैं, केवल भगवान्‌का मैं हूँ। सब भगवान् हैं। भगवान्‌को देख-देखकर मस्त हो जाओ कि वाह प्रभु वाह! क्या-क्या रूप धारण किये हैं!

*** *** ***

श्रोता—हम दूरसे आये हैं। यहाँ आनेपर पता लगा कि आपने दर्शन-प्रणाम करनेके लिये मना कर रखा है, फिर हम अधम लोगोंका उद्धार कैसे होगा?

स्वामीजी—अगर वे मना करनेमें ही राजी हैं तो फिर आपको भी उसमें राजी होना चाहिये! सन्तोंकी प्रसन्नतामें ही हमारा भला है। उनकी प्रसन्नतामें ही आप प्रसन्न रहो तो सब ठीक होगा। कारण कि

सन्तोंके द्वारा सबका भला ही होता है, बुरा किसीका होता ही नहीं। अत: उनकी राजीमें राजी रहना ही बढ़िया-से-बढ़िया चीज है। अपने मनकी राजीमें राजी होना बढ़िया चीज नहीं है। अपने मनकी राजीमें तो पशु-पक्षी आदि सब राजी होते हैं। उससे कल्याण थोड़े ही होता है! कल्याण तो महापुरुषोंकी राजीमें है।

वास्तवमें नमस्कार करनेके लिये मना कोई कर ही नहीं सकता। कैसे करेगा? अभी बैठे हुए आप नमस्कार कर लें तो कैसे मना करेगा? है किसीकी मना करनेकी ताकत? मेरे लिये विशेष आयोजन करते हैं, मेरे लिये इकट्ठे होते हैं, उसके लिये मैंने मना किया है। आप नमस्कार करो तो मैं कैसे मना करूँगा? आप दिखावटीपना ज्यादा करो—यह मैं नहीं चाहता। दिखावटीपना दम्भ है। भगवान् असली चीजसे प्रसन्न होते हैं, नकली चीजसे नहीं। मैं नकलीपनेका निषेध करता हूँ, नमस्कारका नहीं।

अगर मैं अपने लिये कहूँ कि मुझे नमस्कार करो तो क्या यह ठीक रहेगा?

श्रोता—हम काम-क्रोधके वेगमें न चाहते हुए भी बह जाते हैं, उसके लिये कोई उपाय बताइये।

स्वामीजी— 'हे नाथ! हे नाथ!' करो। जब क्रोध आये, चुप हो जाओ। काम, क्रोध और लोभ—ये तीनों नरकोंके दरवाजे हैं। क्रोध आनेपर बोलो मत। मैं एक सुगम उपाय बताया करता हूँ कि क्रोध आनेपर मुखमें पानी भर लो। जबतक क्रोध रहे, मुखमें पानी भरा रहे। फिर थूक दो।

श्रोता—जिस समय काम-क्रोधका वेग आता है, उस समय ये बातें भूल जाते हैं कि उनका समर्थन मत करो, विरोध मत करो, अपनेमें मत मानो!

स्वामीजी—ये बातें तबतक भूल जाते हैं, जबतक सत्संग नहीं करते और साधन नहीं करते। आपसे मेरी प्रार्थना है कि आप साधनमें लग जाओ। अपनी अहंता-परिवर्तनके बिना आप साधनमें लग नहीं सकते। इसलिये अपनी अहंता बदल दो कि 'मैं साधक हूँ'। अहंता बदलते ही आपकी सब क्रियाएँ साधन हो जायँगी। आपका जीवन बदल जायगा, शुद्ध, निर्मल हो जायगा! स्वाँग बना हुआ आदमी भी अपने स्वाँगके विरुद्ध काम नहीं करता।

श्रोता—आप अपनी फोटो खिंचानेके लिये क्यों मना करते हैं?

स्वामीजी—फोटो खींचेंगे और फिर उसकी पूजा करेंगे, इसलिये मना करता हूँ। **व्यक्ति पूजाके लायक नहीं होता, प्रत्युत उसका सिद्धान्त पूजाके लायक होता है।** सिद्धान्तका पालन करो तो कोई मना नहीं करेगा, प्रत्युत प्रसन्न होगा। गीताके अनुसार अपना जीवन बनाओ तो हमारेको प्यारा लगेगा। पूजा हमारेको बुरी लगती है। पूजासे कल्याण नहीं होता। हमारा सिद्धान्त है कि भगवान्‌के चित्रका पूजन होना चाहिये। व्यक्तिकी पूजासे व्यक्तित्व बढ़ता है, और व्यक्तित्व बढ़नेसे पतन होता है। इसलिये अपनेको भगवान्‌में लीन कर दें। मैं-पन समाप्त हो जाय।

हम अपनी पूजा, आरती करायें और आप पूजा करो तो भले ही आप राजी हो जाओ, पर इससे न हमारा कल्याण होगा, न आपका कल्याण होगा। इसलिये मेरी प्रार्थना है कि आप सिद्धान्तका पालन करनेमें पक्के बनो। दिखावटीपन मत करो।

विचार करो, आप अपना कल्याण चाहते हैं तो क्या हम आपका पतन चाहते हैं? हम चाहते हैं कि आप ऊँचे बनो। दिखावटीपनेमें न आप फँसो, न मेरेको फँसाओ। सिद्धान्तके अनुसार अपना जीवन निर्मल बनाओ। जितने निर्मल बनोगे, उतने ऊँचे उठोगे। जितना व्यक्तित्वमें फँसोगे, उतना आपका पतन होगा। व्यक्तित्वमें फँसोगे तो गुरुजी भी नरकोंमें जायँगे और आप भी नरकोंमें जायँगे!

आप भगवान्‌के अंश हैं तो भगवान्‌में ही लीन हो जाओ। भगवान् ही हैं, मैं हूँ ही नहीं! आपकी जगह भगवान् ही आ जायँ, व्यक्ति रहे ही नहीं! निहाल हो जाओगे! व्यक्तित्वसे कल्याण नहीं होता। कल्याण व्यक्तित्व मिटनेसे होता है। इसलिये व्यक्तित्व मत रखो। देहाभिमानसे सभी दोष पैदा होते हैं—**'देहाभिमानिनि सर्वे दोषाः प्रादुर्भवन्ति'**।

जयदयालजीको कोई भी नमस्कार करता तो वे पूछते कि तू माँ-बापको रोजाना नमस्कार करता है कि नहीं? अगर वह कहे कि नहीं करता हूँ तो वे कहते कि खबरदार जो मेरेको नमस्कार किया!

गीतामें आया है कि सब कुछ परमात्मा ही हैं—**'वासुदेवः सर्वम्'** (गीता ७। १९)। इसलिये भगवान्‌का स्वरूप मानकर सबको नमस्कार करो। आप सबको नमस्कार करो तो कौन मना करेगा? कैसे मना करेगा? भागवतमें कल्याणका उपाय बताया है—

विसृज्य स्मयमानान् स्वान् दृशं व्रीडां च दैहिकीम्।
प्रणमेद् दण्डवद् भूमावाश्वचाण्डालगोखरम्॥

(श्रीमद्भा० ११। २९। १६)

'अपने ही लोग यदि हँसी करें तो करने दे, उनकी परवाह न करे, प्रत्युत अपने शरीरको लेकर जो लज्जा आती है, उसको भी छोड़कर कुत्ते, चाण्डाल, गौ एवं गधेको भी पृथ्वीपर लम्बा गिरकर साष्टाङ्ग प्रणाम करे।'

श्रोता—ध्यानमें स्वाभाविकता नहीं आती है!

स्वामीजी—ध्यानमें स्वाभाविकता तब आयेगी, जब संसार अच्छा नहीं लगेगा। **जिसमें सुखकी कामना है, वह ध्यान नहीं कर सकता।** उसका कोई साधन सिद्ध नहीं होता। जिसकी कामना है, उसीका ध्यान होगा।

मेरा कोई नहीं है और मेरेको कुछ नहीं चाहिये—ये दो बातें मान लो तो जीवन महान् पवित्र हो जायगा। अगर आपको संसार चाहिये तो भगवान्‌की प्राप्ति नहीं होगी। **जो किसी भी वस्तुको अपनी मानता है, वह भगवान्‌को अपना नहीं कह सकता। अगर कहता है तो झूठ बोलता है! वह भगवान्‌को अपना कहनेका अधिकारी नहीं है।**

श्रोता—ध्यानकी सरल विधि क्या है?

स्वामीजी—ध्यान तो स्वाभाविक होता है। आपके मनमें जो वस्तु होगी, उसका ध्यान करना नहीं पड़ेगा, प्रत्युत स्वतः उसकी याद आयेगी। **भगवान्‌का ध्यान तब होगा, जब भगवान्‌में अपनापन होगा, भगवान् प्यारे लगेंगे। दूसरी वस्तुओंमें अपनापन होगा तो भगवान्‌का ध्यान करना अपने-आपको धोखा देना है! किसी वस्तुको अपनी नहीं माने, तब भगवान्‌में मन लगेगा।**

जो कुछ भी चाहता है, उसको कुछ ही मिलेगा। परन्तु जो कुछ भी नहीं चाहता, उसको सब कुछ मिलेगा!

ध्यान उसका होता है, जिसकी याद अपने-आप आये। संसारकी याद तो अपने-आप आती है, और भगवान्‌को याद करते हैं! जो अपने-आप होता है, वह असली होता है और जो करते हैं, वह नकली होता है। **ध्यान होता है, किया नहीं जाता।**

*** *** ***

श्रोता—आप कहते हैं कि ममता छोड़े बिना भगवान्‌को अपना नहीं मान सकते, पर ममता हमसे छूटती नहीं! इसका कोई उपाय बताइये।

स्वामीजी—आप कहते हैं कि ममता छूटती नहीं, मैं कहता हूँ कि ममता रहती ही नहीं! ममता रह नहीं सकती। आप ही नयी-नयी ममता करते रहते हो। पिछले जन्मकी ममता अब कहाँ है! तब जो माँ-बाप, स्त्री-पुत्र आदि थे, उनमें आज ममता है क्या?

श्रोता—उनको तो भूल गये!

स्वामीजी—उसी तरह इन सबको भी भूल जाओगे। एकको भी ममता नहीं रहेगी। किसीकी भी ममता रहना असम्भव बात है। आप कहते हो कि ममता मिटती नहीं, मैं कहता हूँ कि टिकती नहीं! आपकी खुदकी ममता बचपनमें जितनी माँमें थी, उतनी आज है क्या? जिस माँको कभी छोड़ते नहीं थे, गोदीमें ही रहते थे, अब माँ वैसी मीठी लगती है क्या? अब स्त्री अच्छी लगती है।

सुत मानहिं मातु पिता तब लौं। अबलानन दीख नहीं जब लौं॥
ससुरारि पिआरि लगी जब तें। रिपुरूप कुटुंब भए तब तें॥

(मानस, उत्तर० १०१। २-३)

'पुत्र अपने माता-पिताको तभीतक मानते हैं जबतक स्त्रीका मुँह नहीं दिखायी पड़ा। जबसे ससुराल प्यारी लगने लगी, तबसे कुटुम्बी शत्रुरूप हो गये।'

ममता तो रहेगी नहीं। आप छोड़ दो तो कल्याण हो जायगा, और रखोगे तो जन्म-मरण होगा, लाभ कुछ होगा नहीं। वस्तु-व्यक्ति तो टिकेंगे नहीं और ममता मिटेगी नहीं! आप छोड़ोगे, तभी मिटेगी। नाशवान्‌में ममता छोड़कर भगवान्‌में ममता (आत्मीयता) कर लो तो निहाल हो जाओगे! भगवान्‌का दरबार सबके लिये खुला है। पापी-से-पापी व्यक्ति भी भगवान्‌में ममता ले तो भगवान् उसको अपना लेते हैं।

श्रोता—आप कहते हैं कि परमात्माकी प्राप्ति तत्काल होती है तो हमलोग सब पण्डालमें बैठे हैं, अभी बैठे-बैठे सबको प्राप्ति हो सकती है क्या?

स्वामीजी—बिल्कुल हो सकती है! पर आप मानो तो होगी। सेठजीको कहा कि हमें भगवान्‌के दर्शन करा दो तो सेठजी बोले कि तुम मानोगे नहीं। वे सज्जन बोले कि आप झूठ तो बोलते नहीं, इसलिये जो आप बोलोगे, हम मान लेंगे। सेठजीने सूर्यकी तरफ इशारा करते हुए कहा कि ये भगवान् हैं। वे सज्जन बोले कि यह तो हमने देखा हुआ है! तभी कहता हूँ कि आप मानोगे नहीं। आप मानो तो बता दें। जो गीताने बताया है, वह बतायेंगे, हमारे घरकी नहीं बतायेंगे। मान लोगे आप? हिम्मत हो तो बोलो!

श्रोता—मान लेंगे!!

स्वामीजी—गीताके सातवें अध्यायके उन्नीसवें श्लोकमें लिखा है—'**वासुदेवः सर्वम्**'। यह सब भगवान् हैं! **आप इस बातको मान लो, इसी क्षण निहाल हो जाओगे!**

*** *** ***

श्रोता—नामजप, पूजा-पाठ करते समय नींद बहुत आती है, इससे बचनेका कोई उपाय बतायें।

स्वामीजी—आपके लिये साधन एक आफत है, इसलिये नींद आती है। साधनमें रुचि होनी चाहिये। रुचि होनेसे नींद नहीं आती। अरुचिपूर्वक करनेसे नींद आती है। अरुचिपूर्वक करना साधन नहीं है। जैसे शरीरके लिये अन्न-जल आवश्यक है, ऐसे ही मनुष्यमात्रके लिये साधन आवश्यक है। रुपया कमाते हुए, रुपया गिनते हुए नींद आती है क्या?

श्रोता—मैं एक साधारण गृहस्थी हूँ। परिवारके पालनके लिये मजदूरी करनेमें सारा समय चला जाता है। ऐसेमें भगवान्‌की प्राप्ति कैसे हो सकती है?

स्वामीजी—कामको भगवान्‌का ही काम समझो। ऐसा मानो कि भगवान्‌का ही काम करता हूँ। पंचामृतका पालन करो—१) मैं भगवान्‌का हूँ, २) भगवान्‌के दरबारमें रहता हूँ, ३) भगवान्‌का काम करता हूँ, ४) भगवान्‌का प्रसाद (भोजन) पाता हूँ, और ५) भगवान्‌के दिये प्रसादसे भगवान्‌के जनों (माँ-बाप, स्त्री-पुत्र, भाई-बन्धु आदि)-की सेवा करता हूँ। इस पंचामृतको आप याद रखो। यह बहुत कामकी चीज है।

*** *** ***

श्रोता—'करने' की अपेक्षा 'कुछ नहीं करने' को श्रेष्ठ क्यों बतलाया है?

स्वामीजी—'नहीं करना' सीखना चाहिये। आलस्यमें बैठे रहना, निकम्मा समय बरबाद करना 'नहीं करना' नहीं है। 'नहीं करने' का तात्पर्य है कि भगवान्‌का होकर फिर अपने लिये कुछ नहीं करना है। 'मैं भगवान्‌का हूँ'—इस प्रकार भगवान्‌का सम्बन्ध अटल रखना है। ***'ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी॥'***—यह याद कर लो। बड़े-से-बड़े, छोटे-से-छोटे, महात्मा-से-महात्मा, कसाई-से-कसाई सब-के-सब भगवान्‌के अंश हैं। अपने लिये कुछ न करके सेवा करना है। फलेच्छाका त्याग करके सेवा करना, दूसरोंको सुख-आराम पहुँचाना 'न करने' की तरह ही है। अपने लिये कुछ नहीं करना है। ***'चेतन अमल सहज सुख रासी'*** के लिये क्या करना है?

श्रोता—'नहीं करना' और 'सही करना'—इन दोनोंमेंसे कौन-सा ठीक है?

स्वामीजी—दोनोंमेंसे पहले 'सही करना' बढ़िया है। कारण कि सही करनेसे ही 'नहीं करना' आता है। सही किये बिना 'नहीं करना' आता नहीं। 'सही करने' का तात्पर्य है—शरीर आदि पदार्थ और क्रिया—इन दोनोंसे निष्कामभावपूर्वक सबकी सेवा करना, सबको सुख-आराम पहुँचाना। यह करनेसे फिर 'नहीं करना' आ जायगा। अपने लिये कुछ नहीं करना है।

सेवा दो प्रकारसे होती है—परिश्रम करके सेवा करना और पदार्थ देकर सेवा करना। क्रिया और पदार्थ—ये दोनों ही प्रकृतिके कार्य हैं। प्रकृतिका कार्य केवल संसारकी सेवाके लिये है, अपने सुखभोगके लिये नहीं है। अपने लिये परमात्मा हैं। उन परमात्माके शरण हो जाय।

श्रोता—सेठजी वैराग्यपर और शरणानन्दजी विवेकके आदरपर जोर देते थे, आप किसपर जोर देते हैं?

स्वामीजी—आप भगवान्‌के हो जाओ और हरदम भगवान्‌के ही होकर रहो कि 'हमारे प्रभु हैं, हम प्रभुके हैं। 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!' पुकारो। प्रभुकी कृपासे सब ठीक हो जायगा!

श्रोता—आप नामजपकी इतनी महिमा बताते हैं तो ऐसी लगन कैसे लगे कि नामजपके बिना रहा ही न जाय?

स्वामीजी—नामजपकी महिमा हम कम बताते हैं! पूरी महिमा हम जानते ही नहीं! नामजपकी लगन लगेगी नामजप करनेसे। बीड़ी-सिगरेट पीनेसे उसका व्यसन लग जाता है। पहले वह बुरी लगती है, पर पीना शुरू कर दे तो फिर उसके बिना रहा नहीं जाता! ऐसे ही आप रात-दिन नामजपमें लग जाओ तो फिर नामजपके बिना रहा नहीं जायगा।

श्रोता—घर छोड़े हुए तीन महीने हो गये, अभीतक उस परमात्माका कोई पता नहीं है और कोई बताता भी नहीं है!

स्वामीजी—हम क्या बताते हैं? कोई नहीं बताता, यह नहीं है। अभी मैंने कहा था, नहीं सुना हो तो अब सुन लो कि **आप भगवान्‌के हो जाओ और भगवान्‌के ही होकर रहो।** अब यह नहीं कहना कि कोई बताता नहीं!

श्रोता—अपने लिये नामजप, पाठ-पूजा, स्वाध्याय करना साधन है या असाधन?

स्वामीजी—अपने लिये नहीं करना है, प्रत्युत भगवान्‌के लिये, दुनियाके कल्याणके लिये करना है। अपने लिये तो भगवान् हैं। कुछ भी करो अथवा न करो, यह मान लो कि हम भगवान्‌के हैं, भगवान् हमारे हैं।

*** *** ***

श्रोता—गोरखपुरमें आपने एक प्रवचनमें कहा था कि भगवान्‌के दर्शन आज ही हो सकते हैं। हम भी भगवान्‌के दर्शन चाहते हैं तो क्या आज ही भगवान्‌के दर्शन हो जायँगे?

स्वामीजी—हाँ, हो सकते हैं। हो जायँगे—यह मैं नहीं कहता! हो सकते हैं; क्योंकि भगवान्‌के जितना सुगम कोई है नहीं। सिद्धान्तकी बात है कि भगवत्प्राप्तिके समान सरल कोई काम नहीं है। **केवल यह बात जँच जाय कि मैं केवल भगवान्‌का हूँ और केवल भगवान् मेरे हैं, तो दर्शन हो जायँगे!** धन-सम्पत्ति, मान-बड़ाई, आदर-सत्कारको आप मुख्य समझोगे तो दर्शन होना सम्भव नहीं है। भगवान्‌को मुख्य मानो।

मनुष्यमात्र परमात्माकी प्राप्तिका अधिकारी है। चाहे भाई हो, चाहे बहन हो, सबको परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है। मनुष्यजन्मका मुख्य काम ही यही है! जिस कामके लिये शरीर मिला है, वह काम अगर कठिन है तो सुगम क्या होगा? इसलिये भगवान्‌की कृपासे सबको उनकी प्राप्ति हो सकती है।

जैसे, हम मानते हैं कि यह एक सामान्य नदी है, पर कोई कहे कि यह तो गंगाजी है, तो गंगाजीकी प्राप्ति होनेमें क्या देर लगी? एकदम भाव बदल जायगा! ऐसे ही **अगर आप 'वासुदेवः सर्वम्' 'यह सब कुछ परमात्मा है'—यह स्वीकार कर लो तो परमात्माकी प्राप्ति हो गयी.....हो गयी.....बिल्कुल हो गयी!!** गीतामें इसको सबसे उत्तम बताया है—'**वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः**' (गीता ७। १९)।

श्रोता—हमारी क्या गलती है, जिससे भगवान् नहीं मिलते?

स्वामीजी—संसारको महत्त्व दिया है। खुद अविनाशी होते हुए भी आपने नाशवान्‌को महत्त्व दिया है—यही बड़ी गलती है। नाशवान्‌को महत्त्व मत दो तो सब ठीक हो जायगा।

*** *** ***

श्रोता—ऐसा सुना है कि स्वामी रामकृष्ण परमहंस तथा अन्य कई सन्त शक्तिपातके द्वारा शिष्यको दीक्षा देते थे। आप ऐसा क्यों नहीं करते?

स्वामीजी—उन्होंने शक्तिपात किया है तो एक नरेन्द्र (स्वामी विवेकानन्द)-के ऊपर ही किया है, दूसरोंपर नहीं। सन्त पात्रता देखते हैं। जैसे छोटे पात्रमें ज्यादा वस्तु डालें तो वह फट जायगा, ऐसे ही पात्रताके बिना शक्तिपात किया जाय तो मनुष्य सह नहीं सकेगा, मर जायगा! शक्तिपात सहनेकी योग्यता होनी चाहिये। अगर आप पात्र हो जायँगे तो भगवान् शक्तिपात कर देंगे!

एक सन्तको किसी व्यक्तिने शक्तिपात करनेके लिये बहुत कहा तो वे सन्त बोले कि अच्छा, बैठ

जाओ। जब शक्तिपात किया तो वह व्यक्ति बहुत घबरा गया और चिल्लाने लगा कि सब संसार लुप्त हो गया! बचाओ! वह शक्तिपात सह नहीं सका। अत: वक्तामें शक्तिपात करनेकी और श्रोतामें शक्तिपात सहनेकी योग्यता होनी चाहिये।

शक्तिपात चार प्रकारसे होता है—स्पर्शसे, वचनसे, दृष्टिसे और मनसे। मुर्गी अपने अंडेपर बैठी रहती है और इस प्रकार उसके स्पर्शसे अंडा पक जाता है—यह 'स्पर्श' से होनेवाला शक्तिपात है। कुररी आकाशमें शब्द करती हुई घूमती रहती है और इस प्रकार उसके शब्दसे अंडा पक जाता है—यह 'शब्द' से होनेवाला शक्तिपात है।। मछली थोड़ी-थोड़ी देरमें अपने अंडेको देखती रहती है, जिससे अंडा पक जाता है—यह 'दृष्टि' से होनेवाला शक्तिपात है। कछुई रेतके भीतर अंडा देती है, पर खुद पानीके भीतर रहती हुई उस अंडेका निरन्तर स्मरण करती रहती है, जिससे अंडा पक जाता है—यह 'मन' से होनेवाला शक्तिपात है।

सत्संगमें शब्दोंके द्वारा जो बातें कही जायँ, उनको आप सुनो तो बहुत लाभ होता है, इसमें सन्देह नहीं है। शब्द वही होते हैं, पर जिसकी पकड़ ज्यादा होती है, वह ज्यादा लाभ लेता है, और जिसकी पकड़ कम होती है, वह कम लाभ लेता है। '**वासुदेवः सर्वम्**' की बातपर ध्यान देनेसे काम-क्रोधादिकी वृत्तियाँ शान्त होती हैं। सत्संगमें शब्दोंका बड़ा असर पड़ता है। नींबूका, मिरचीका अचार याद करो तो मुँहमें पानी आ जाता है!

साधक परमात्माके सम्मुख हो जाय तो उसमें अपने-आप विलक्षणता आ जाती है, इसमें सन्देह नहीं है। मनुष्य देखता है कि भगवान् कृपा करें। वास्तवमें भगवान् सबपर समान रूपसे कृपा करते हैं, पर मनुष्य उनकी कृपाको ग्रहण नहीं करते। कृपाकी कमी नहीं है, प्रत्युत उसको ग्रहण करनेकी कमी है।

*** *** ***

श्रोता—वैराग्य स्थिर कैसे हो?

स्वामीजी—वैराग्यवान्‌का संग करनेसे। वैराग्यवान्‌के संगसे वैराग्य होता है। जैसे सब्जी लेनी हो तो सब्जी-मण्डीमें जाते हैं, कपड़ा लेना हो तो कपड़ा-बाजारमें जाते हैं, ऐसे ही वैराग्य लेना हो तो वैराग्यवान् पुरुषोंके पास जाओ, उनका संग करो। वैराग्यकी बातें करो, वैराग्यकी बातें पूछो और वैराग्यकी बातें सुनो। वैराग्यवान् न मिले तो वैराग्यवान् सन्त-महात्माओंका चरित्र पढ़ो, भक्तोंका चरित्र पढ़ो।

श्रोता—आप कहते हैं कि भगवान् भक्तोंका भी कल्याण करते हैं और पापियोंका भी कल्याण करते हैं, तो फिर भक्तिमार्गपर चलनेकी क्या आवश्यकता है?

स्वामीजी—भक्ति तो दोनोंमें होती है। भक्ति होनेसे, भगवान्‌के सम्मुख होनेसे ही पापीका कल्याण होगा—

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥

(मानस, सुन्दर० ४४। १)

'जीव ज्यों ही मेरे सम्मुख होता है, त्यों ही उसके करोड़ों जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं।'

*** *** ***

श्रोता—किसी कारणसे गुरुकी अवहेलना हो जाय तो उसके लिये क्या प्रायश्चित्त करना चाहिये?

स्वामीजी—गुरुसे माफी माँग लो, और उनकी आज्ञाका पालन करो। गुरु कृपालु होते हैं, माफ कर देते हैं। अगर गुरुका शरीर नहीं हो तो मनसे माफी माँग लो। गुरु मरता नहीं, सदा साथमें रहता

है।

गुरु-तत्त्व अखण्ड है, नित्य है। उसका कभी नाश नहीं होता। शरीरका तो नाश हो जाता है, पर गुरुका नाश नहीं होता। कोई विशेष शंका हो तो वे किसी भी रूपमें आकर उसका समाधान कर देते हैं। गीताप्रेसके एक ट्रस्टी थे—जयदयालजी कसेरा। वे रोजाना सुबह पद गाया करते—***‘चाकर राखो जी, श्याम म्हाने चाकर राखो जी’***। एक दिन उनके मकानके तीसरे तल्लेसे एक छोटा बालक बोला कि ‘बाबूजी! आपको चाकर (नौकर) रख लिया, क्यों हल्ला करो’! उस दिनसे उन्होंने पद गाना छोड़ दिया। आप कहीं जा रहे हैं और रास्तेमें कोई आपसमें बातें कर रहा है, उन बातोंमें ही आपको कोई बात मिल जायगी और आपका समाधान हो जायगा! आपने कोई पुस्तक खोली तो खोलते ही वहीं आपको बात मिल जायगी, जिससे आपका समाधान हो जायगा। यह गुरु-कृपासे होता है। परन्तु गुरु असली हो और हमारा भाव भी असली हो।

*** *** ***

श्रोता—यह संसार अनित्य है। इस अनित्यको छोड़कर थोड़ी-थोड़ी देरमें नित्यमें स्थित होनेका प्रयास करते हैं। इस तरह प्रयास करते हुए बहुत समय बीत गया है। फिर देरी सफलतामें क्यों हो रही है?

स्वामीजी—नित्यमें स्थित होना आया नहीं है! वास्तवमें नित्यमें स्थिति सदासे है, करनी नहीं है। अनित्यमें स्थिति दीखती है, वास्तवमें है नहीं। **परमात्मामें स्थिति दीखती नहीं, पर है और शरीरमें स्थिति दीखती है, पर है नहीं।** आप दृढ़तासे मान लो कि नित्यमें हमारी निरन्तर स्थिति है, स्वाभाविक स्थिति है। ऐसा मत मानो कि हमारे उद्योगसे स्थिति होगी। संसारमें स्थिति मानी है, उसे छोड़ देना है। बस, इतनी ही बात है! जो निरन्तर नष्ट हो रहे हैं, उन शरीर-संसारमें स्थिति कैसे होगी? स्थिति है ही नहीं।

स्वरूपमें हमारी स्थिति है—यह न मानकर ऐसा मानो कि संसारमें हमारी स्थिति नहीं है।

श्रोता—आपने यह कहा कि वैराग्यवान् पुरुषके संगसे वैराग्य होता है; परन्तु वैराग्यवान् पुरुष मिलते ही नहीं! जहाँ वैराग्यवान् समझकर जाते हैं, वहाँ रागी-भोगी पुरुष ही मिलते हैं!

स्वामीजी—संग न मिले तो वैराग्यवान्‌का मनसे चिन्तन करो। भगवान् वैराग्य, ज्ञान आदिकी पराकाष्ठा हैं। अत: कोई वैराग्यवान् पुरुष न दीखे तो भगवान्‌का संग करो। भगवान्‌से ज्यादा वैराग्यवान् दूसरा कोई मिल सकता ही नहीं। सब जगह भगवान्‌को देखो और नमस्कार करो, पर संग किसीका नहीं करना है। ‘मैं भगवान्‌का हूँ, भगवान् मेरे हैं’—यह भगवान्‌का संग है। आप भगवान्‌के शरण हो जाओ कि हम भगवान्‌के हैं, भगवान् हमारे हैं। सब काम हो जायगा! आपके पास अपने-आप भगवान् आयेंगे, सन्त आयेंगे! हम भगवान्‌के अंश हैं—**‘ममैवांशो जीवलोके’** (गीता १५। ७); ***‘ईस्वर अंस जीव अबिनासी’*** (मानस, उत्तर० ११७। १)।

एक बात बतायें! पुस्तकोंमें ‘तुम भगवान्‌के हो’—यह बात तो आती है, पर ‘तुम ईश्वरके अंश हो’—यह बात नहीं आती! उपदेश देनेवाले सन्त बड़ी कृपा करके ऐसा लिखते हैं कि ‘तुम भगवान्‌के हो’, पर यह नहीं कहते कि ‘तुम भगवान्‌के अंश हो’! ‘हम भगवान्‌के अंश हैं’—इसपर जोर दो तो सब ठीक हो जायगा! आपकी सत्ता उसी सत्तासे है! पर इस बातको सन्त जल्दी कहते नहीं। यह रीति है। भगवान्‌को भी परोक्ष प्रिय है—**‘परोक्षवादा ऋषयः परोक्षं मम च प्रियम्’** (श्रीमद्भा० ११। २१। ३५)। बातको जितनी सरल करते हैं, उतनी कठिन हो जाती है! जो हम कहें, उसको आप

मान लो तो सब ठीक हो जायगा, इसमें कोई सन्देह नहीं।

***　　　***　　　***

श्रोता—मनुष्य ऋषि कैसे बन सकता है?

स्वामीजी—अपने स्वार्थ और अभिमानका त्याग करके सबका हित करनेसे।

श्रोता—ऋषि होनेके लिये जंगलोंमें जाना, घास-फूसकी कुटियामें रहना, कंद-मूल-फल खाना जरूरी है क्या?

स्वामीजी—इनकी जरूरत नहीं है। चाहे घरमें रहो, चाहे जंगलमें रहो, स्वार्थ और अभिमानका त्याग तो करना पड़ेगा ही। मनुष्य घरमें रहते हुए भी ऋषिका जीवन बहुत सुन्दरतासे बिता सकता है। गीताकी यह विशेषता है कि वह व्यवहारमें परमार्थकी शिक्षा देती है।

***　　　***　　　***

एक बात आप ध्यान देकर सुनो। अभी यह मौका है। यह चूकनेके बाद फिर ऐसा मौका मिलना मुश्किल है! अतः चेत करो, सावधान हो जाओ! ऐसा मौका मिलेगा नहीं! *[ऊँची आवाजमें—]* **ऐसा मौका नहीं मिलेगा!!** आप मानो, चाहे मत मानो, बात यही है......नहीं मिलेगा! अभी बहुत सुन्दर मौका मिला है! इस सत्संगमें भी विशेष मौका मिला है! पर आप मानते नहीं! भले ही हेला मारो, मेरी बात सुनते नहीं! परवा नहीं करते! यह मौका अभी चूकते हो, बड़ा भारी नुकसान है! बड़ा भारी नुकसान है!! ऐसा मौका बार-बार मिलेगा नहीं! अभी अपना कल्याण कर लो। बड़ी सुगमतासे हो जायगा! अगर यह चूक गया तो फिर नहीं मिलेगा! यह बड़ा भारी दुर्लभ मौका मिला हुआ है! मैं कितना ही कहूँ, आप मानते नहीं! आप मानो नहीं तो हम क्या करें, बताओ!

श्रोता—क्या करना चाहिये?

स्वामीजी—सच्चे हृदयसे भगवान्‌में लग जाओ, और हरदम भीतरमें चलाओ कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। भाइयो! आगे खोटे दिन आनेवाले हैं! अशान्ति, दुःख, सन्ताप, जलन बढ़ेंगे! अभी भगवान्‌की कृपासे यह मौका विशेषतासे मिला है! अभी मान लो तो बहुत फायदा है! अभी चूक गये तो फिर मौका मिलेगा नहीं!

दो बातें खास हैं—अपनी कोई चीज नहीं है और अपनेको कुछ नहीं चाहिये। अनन्त ब्रह्माण्डोंमें तिल-जितनी चीज भी अपनी नहीं है। सिवाय भगवान्‌के कोई चीज अपनी है ही नहीं। परन्तु लोग भोगोंमें और रुपयोंमें लगे हैं! ये भोग और रुपये कुछ काम आयेंगे नहीं, केवल धोखा होगा, धोखा! आपके जीवन-निर्वाहकी चीजें अपने-आप मिलेंगी। इन दो बातोंको मान लो, बहुत फायदा होगा। ये बातें आपको बार-बार कौन कहेगा, और क्यों कहेगा?

आप किसी तरह भगवान्‌में लग जाओ। गीता-रामायण पढ़ो, विनय-पत्रिका पढ़ो, नल-दमयन्तीकी कथा सुनो, नामजप करो, कीर्तन करो, प्रार्थना करो। बहुत सुन्दर अवसर है! आप थोड़ी लगन लगाओ। भगवान्‌को 'हे नाथ! हे नाथ!' पुकारो। बहुत लाभ होगा.....बहुत लाभ होगा.....बहुत लाभ होगा! मेरे मनमें आयी कि कम-से-कम नल-दमयन्तीकी कथा पढ़ लेनी चाहिये। इससे कलियुगका असर नहीं पड़ेगा।

कर्कोटकस्य नागस्य दमयन्त्या नलस्य च।
ऋतुपर्णस्य राजर्षेः कीर्तनं कलिनाशनम्॥

(महाभारत, वन० ७९। १०)

'कर्कोटक नाग, दमयन्ती, नल तथा राजर्षि ऋतुपर्णकी चर्चा कलियुगके दोषका नाश करनेवाली है।'

भगवान्‌में लग जाओ और 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!' पुकारो। भगवान्‌के पीछे पड़ जाओ। केवल यह कहते रहो कि 'हे नाथ! हे मेरे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। भगवान्‌से भी यही माँगो कि 'हे नाथ! ऐसी कृपा करो कि मैं आपको भूलूँ नहीं'। सब काम ठीक हो जायगा!

***　　　　***　　　　***

श्रोता—आपने बताया कि स्वार्थ और अभिमान—ये दो ही विशेष बाधाएँ हैं। हमलोग सुबह जगनेसे लेकर रात सोनेतक घरका काम करते हैं, नौकरी करते हैं, भोजन आदि करते हैं, पता ही नहीं लगता कि कौन-सा काम स्वार्थका है, कौन-सा काम बिना स्वार्थका?

स्वामीजी—अपना मतलब सिद्ध हो, हमारा काम सिद्ध हो, हमारी बात रह जाय, हमें लाभ हो जाय, हमारेको सुख हो जाय, हमें आराम मिले, हमारे बहुत-से रुपये पैदा हो जायँ, हम सदा सुखी रहें, हमारा नाम हो जाय, हमें लोग पूछें, हमारा बेटा ठीक हो जाय, हमारी इज्जत हो जाय—यह सब अपने स्वार्थकी बात है। रात-दिन काम-धंधा करते हो तो अपने स्वार्थके लिये ही तो करते हो, और किसलिये करते हो? क्या दुनियाके हितके लिये करते हो? रात-दिन हरदम, बिना विचार किये स्वतः-स्वाभाविक यह बात रहती है कि अपना स्वार्थ सिद्ध हो। मनमें यह भाव आना चाहिये कि मैं काम करूँ और दुनियाका भला हो जाय। सबका कल्याण कैसे हो, सबका हित कैसे हो—ऐसी मनमें आती है क्या? व्याख्यान देते हैं तो भीतर यह भाव रहता है कि इससे हमारा हित हो, हमारी महिमा हो, हमारी प्रशंसा हो, हमें लोग अच्छा कहें। सबका कल्याण कैसे हो जाय, सबको परमात्माकी प्राप्ति कैसे हो जाय, सब भगवान्‌के भक्त कैसे बन जायँ—ऐसी मनमें आती ही नहीं! कोरा स्वार्थ-ही-स्वार्थ भरा है! इससे होगा कुछ नहीं, केवल अपना पतन होगा! आप अपना उद्धार कर नहीं सकोगे! अपना उद्धार तभी होता है, जब सबके हितका भाव हो—'**ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः**' (गीता १२। ४) 'प्राणिमात्रके हितमें प्रीति रखनेवाले मनुष्य मुझे ही प्राप्त होते हैं'।

***　　　　***　　　　***

श्रोता—मनमें बुरे-बुरे विचार आते हैं, क्या करूँ?

स्वामीजी—बुरे विचार आते हैं—ऐसा मत मानो। भजन-स्मरण करनेवालेको ऐसा मानना चाहिये कि बुरे विचार निकल रहे हैं। दरवाजेपर आता हुआ भी दीखता है, और जाता हुआ भी दीखता है। हम परमात्मामें लगे हैं तो पुराने बुरे विचार जा रहे हैं।

श्रोता—भगवान् अगर चाहें तो सबका कल्याण हो सकता है!

स्वामीजी—आपके चाहनेके बाद भगवान् चाहते हैं, पहले नहीं चाहते। आप पहले चाहो, फिर भगवान् चाहेंगे—'**ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्**' (गीता ४। ११)।

श्रोता—मेरेसे जप तो खूब होता है, लेकिन शान्ति नहीं मिलती है!

स्वामीजी—शान्ति तब मिलेगी, जब आप भगवान्‌के होकर नामजप करोगे—'***होहि राम को नाम जपु***'। मैं भगवान्‌का हूँ, भगवान् मेरे हैं—ऐसा मानकर जप करो।

श्रोता—आपने कहा था कि नल-दमयन्तीकी कथाको पढ़नेसे कलियुगका असर नहीं होता, तो इसको रोज पढ़ना है या एक बार?

स्वामीजी—एक बार पढ़ लो और ‘**कर्कोटकस्य नागस्य०**’ यह श्लोक याद कर लो।

श्रोता—आप कहते हैं ***‘होहि राम को नाम जपु’;*** परन्तु जब रामजीके हो गये तो फिर जप क्या करना है?

स्वामीजी—जप नहीं करोगे तो और क्या करोगे? जपसे बढ़िया चीज कौन-सी है? रामजीका होनेपर जप अपने-आप होगा, करना नहीं पड़ेगा।

श्रोता—जैसे मुक्ति तत्काल हो सकती है, वैसे ही प्रेम भी तत्काल प्रकट हो जाय—ऐसी बात बताइये।

स्वामीजी—अगर आपकी उत्कट इच्छा हो जाय तो हो जायगा। दूसरी कोई इच्छा नहीं हो, जीनेकी इच्छा भी नहीं, मरनेकी इच्छा भी नहीं। दूसरी इच्छा ही बाधक होती है। जीनेकी, मरनेकी, मिलनेकी, धनकी, मान-बड़ाईकी, आदर-सत्कारकी, कोई इच्छा नहीं हो। केवल एक प्रेमकी इच्छा हो। **आपको केवल इतनी ही सावधानी रखनी है कि एक परमात्माके सिवाय कोई इच्छा न रहे। फिर सब काम अपने-आप हो जायगा।**

***　　　***　　　***

श्रोता—हमारा चेतन स्वरूप ही ईश्वर है या ईश्वर कोई और है?

स्वामीजी—चेतन स्वरूप भी है, और भी है, दोनों है। स्वरूप ईश्वरका अंश है; अतः स्वरूपमें और ईश्वरमें फर्क नहीं है। दोनों ही सच्चिदानन्दस्वरूप हैं। परन्तु ईश्वरमें जो सामर्थ्य है, वह स्वरूपमें नहीं है। शास्त्रमें आता है—‘**जगद्व्यापारवर्जम्**’ (ब्रह्मसूत्र ४। ४। १७)। तात्पर्य है कि जगत्‌की उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय करनेवाली शक्ति ईश्वरमें है, जीवमें नहीं है।

श्रोता—शरीरमें करोड़ों जीव होते हैं। जीवन्मुक्त महापुरुषके शरीरमें भी जो करोड़ों जीव रहते हैं, उनका उस महापुरुषके साथ कल्याण हो जाता है कि नहीं?

स्वामीजी—नहीं। उन जीवोंकी अपनी-अपनी अलग सृष्टि है। वे जीवन्मुक्तके साथ नहीं हैं। इतनी बात है कि वे जीव बड़भागी हैं, कल्याणके भागीदार हैं; क्योंकि वे जीवन्मुक्तके शरीरमें हुए हैं! जीवन्मुक्तका शरीर बहुत पवित्र होता है। इसके विपरीत पापी मनुष्यका शरीर महान् अपवित्र होता है। एक श्लोक आता है—

हस्तौ दानविवर्जितौ श्रुतिपुटौ सारस्वतद्रोहिणौ
नेत्रे साधुविलोकनेन रहिते पादौ न तीर्थं गतौ।
अन्यायार्जितवित्तपूर्णमुदरं गर्वेण तुङ्गं शिरो
रे रे जम्बुक मुञ्च मुञ्च सहसा नीचस्य निन्द्यं वपुः॥

(चाणक्यनीति० १२। ४)

‘(एक मृत मनुष्यशरीरको खानेके लिये आये किसी सियारको आकाशवाणीने सावधान करते हुए कहा—) अरे सियार! इस नीच मनुष्यके निन्दनीय शरीरको शीघ्र ही त्याग दे; क्योंकि इसके हाथोंने कभी दान नहीं दिया, कानोंने कभी शास्त्र-श्रवण नहीं किया, नेत्रोंने कभी साधुजनोंके दर्शन नहीं किये, पैरोंने कभी तीर्थगमन नहीं किया, इसका पेट अन्यायसे उपार्जित धनसे ही पला हुआ है और इसका सिर सदा ही घमण्डसे ऊँचा रहा है।’

हमलोगोंसे चलते हुए कोई जीव मर जाता है तो उस जीवकी दुर्गति होती है, पर महात्मासे मर जाय तो उसकी सद्‌गति होती है! परन्तु उनमें यह सावधानी रहती है कि कोई जीव मर न जाय।

इतना ही नहीं, महात्माओंके शरीरका स्पर्श करनेवाली हवासे मुक्ति हो जाय! महात्माओंको याद करनेमात्रसे फर्क पड़ता है! वे किसी सभामें चले जायँ तो वह सभा बदल जाती है, उस सभामें फर्क पड़ जाता है! शास्त्रमें आता है—

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा
न ते वृद्धा ये न वदन्ति धर्मम्।
नासौ धर्मो यत्र न सत्यमस्ति
न तत् सत्यं यच्छलेनाभ्युपेतम्॥

(महाभारत, उद्योग० ३५। ५८)

'जिस सभामें बड़े-बूढ़े न हों, वह सभा नहीं है; जो धर्मकी बात न कहें, वे बूढ़े नहीं हैं; जिसमें सत्य न हो, वह धर्म नहीं है; और जो कपटसे पूर्ण हो, वह सत्य नहीं है।'

हमारा कुछ नहीं है और हमें कुछ नहीं चाहिये—ये दो बातें आप मान लो तो आप अभी इसी क्षण महान् पवित्र हो जाओगे! कोई कमी बाकी नहीं रहेगी! एकदम पूर्णता हो जायगी! प्राप्तमें ममता नहीं हो और अप्राप्तकी इच्छा नहीं हो तो क्या कमी रही?

क्या माँगता है इष्ट से, तू इष्ट का भी इष्ट है।
है श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ तू, पर चाह करके भ्रष्ट है॥

मनुष्य जिस वस्तुकी इच्छा करता है, उसका गुलाम हो जाता है। इच्छा सर्वथा छोड़ दो तो लौकिक काम, गृहस्थका काम भी बहुत बढ़िया होगा।

***　　　***　　　***

भगवान् और उनकी परा तथा अपरा प्रकृति—ये तीन हैं। भगवान् तो अपने हैं, पर अपरा प्रकृति अपनी नहीं है, भगवान्‌की है। अपरा प्रकृति जड़ है। अतः अपरा प्रकृतिके मन, बुद्धि और अहंकार भी जड़ हैं। आप भगवान्‌को अपना मान लो, और अपरा प्रकृति छूटे अथवा न छूटे, उसकी बेपरवाह कर दो, उसकी उपेक्षा कर दो, उससे उदासीन हो जाओ, उससे तटस्थ हो जाओ, उससे अलग हो जाओ। मन, बुद्धि और अहंकार आपकी जातिके नहीं हैं। आपकी जातिके भगवान् हैं। भगवान्‌के साथ आपकी एकता है। मन-बुद्धि-अहंकार कितने ही अपने दीखें, पर ये अपने नहीं हैं—इस बातको दृढ़तासे पकड़ लो। भगवान्‌के सिवाय दूसरी सब वस्तुएँ आपसे वियुक्त होनेवाली हैं। कोई वस्तु आपके साथ रहनेवाली नहीं है। नरकोंमें भी जाओ तो भगवान् आपके साथ रहते हैं। गाढ़ नींदमें भी शरीर नहीं रहता, पर आप रहते हो और भगवान् रहते हैं। भगवान्‌के सिवाय और किसीकी रहनेकी ताकत नहीं है।

जब कभी अहंकार आये तो 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!' भगवान्‌को पुकारो। वह ऐसे शान्त हो जायगा, जैसे उफनते हुए दूधमें जल डालनेसे दूध! कोई आफत आये तो 'हे नाथ! हे नाथ!' पुकारो। 'हे नाथ!' कहते ही फर्क पड़ता है। 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!' कहकर भगवान्‌के चरणोंमें पड़ जाओ, कुछ मत करो। निश्चिन्त हो जाओ। भगवान्‌की कृपासे सब ठीक हो जायगा!

श्रोता—गीतामें भगवान्‌ने कहा है कि मुझे प्राप्त होनेपर पुनरागमन नहीं होता। परन्तु ऐसा सुना है कि किसी-किसीने नरसीजी, मीराबाई आदिके रूपमें पुनः जन्म लिया! इसमें क्या कारण है?

स्वामीजी—उनके मनमें कोई वासना रह जाती है, इसलिये आ जाते हैं। उनके आनेमें कोई बाधा नहीं है। वह वासना बाधक नहीं होती, प्रत्युत कल्याण करनेवाली होती है। परन्तु यह अपवाद है।

वास्तविक बात तो यही है कि भगवान्‌की प्राप्ति होनेपर पुनरागमन नहीं होता।

श्रोता—राधा-तत्त्व क्या है?

स्वामीजी—भगवान्‌को भी वशमें करनेवाले प्रेमका नाम 'राधा' है।

*** *** ***

श्रोता—कलियुगमें धर्मके एक चरण 'दान' को ही विशेष बतलाया गया है, लेकिन पात्रको ही दान देनेका महत्त्व है। अतः कलियुगमें सत्पात्रको कैसे ढूँढ़ें?

स्वामीजी—आप अपनी दृष्टिसे अच्छे-से-अच्छा सत्पात्र देखो। इसमें भी अन्न, जल, वस्त्र और औषध—इन चारोंका दान करनेमें पात्र-अपात्रका विशेष विचार नहीं करना है, प्रत्युत लेनेवालेकी आवश्यकता देखनी है। धन देना हो तो सुपात्र देखकर देना चाहिये। कन्या देनी हो तो कुल, वंश आदि सब बातें देखकर देनी चाहिये, जिससे कन्या सुख पाये। अलग-अलग दानके अलग-अलग पात्र होते हैं। आप अपनी दृष्टिसे अच्छा देखो।

पात्र-कुपात्रका ज्यादा विचार करोगे तो दान देना बन्द हो जायगा! आप खुद कुपात्र हो जाओगे! अपनी तरफ देखना चाहिये कि मैं कैसा हूँ? मेरा धन कैसा है? मेरा धन कितना पवित्र है? जैसा हमारा धन है, ऐसा पात्र मिल जाय तो भी बहुत अच्छा है!

*** *** ***

श्रोता—क्या परमात्माकी प्राप्ति इसी तरह है कि जैसे कोई बूँद सागरको प्राप्त करना चाहे?

स्वामीजी—बात ऐसी ही है; परन्तु इसमें एक विलक्षणता है! बूँद तो सागरसे मिलना चाहती है, पर समुद्र मिलना नहीं चाहता; परन्तु परमात्मा खुद मिलना चाहते हैं! भाईजी (श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)-ने कहा था कि जैसे कोई प्याससे मरता है, कोई भूखसे मरता है, ऐसे भगवान् मिलनेके लिये मरते हैं! जब भगवान् मिलना चाहते हैं तो फिर उनसे मिलनेमें क्या जोर? भगवान् कहते हैं कि जो जैसा मेरा भजन करते हैं, मैं उनका वैसे ही भजन करता हूँ—**'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्'** (गीता ४। ११)। वे मेरे बिना नहीं रह सकते तो मैं भी उनके बिना नहीं रह सकता। एक मच्छर गरुड़जीसे मिलना चाहे तो मच्छरके उड़नेसे पहले ही गरुड़जी आ जायँगे! **जीव मेरेसे अलग रहे, यह भगवान्‌को अभीष्ट नहीं है।** अब उनके मिलनेमें क्या देरी लगे? केवल हमारी चाहनाकी देरी है। हमारी चाहना हो जाय तो सब ठीक हो जाय!

वास्तवमें भगवान् केवल मिलना चाहते ही नहीं, प्रत्युत मिले हुए ही हैं! मैंने आपसे कई बार कहा है कि जो दीखता है, इसको आप परमात्मा मान लो। गीतामें साफ लिखा है—**'वासुदेवः सर्वम्'** (गीता ७। १९) सब कुछ वासुदेव ही है। **परमात्माको आपने जगत् मान रखा है, फिर वे कैसे मिलेंगे?** परमात्मा मान लो तो आपको क्या बाधा लगती है? क्या बेइज्जती होती है? क्या आपका खर्च होता है? क्या कठिनता होती है? परन्तु आपने गीताकी बात न मानकर अपनी मान्यताको दृढ़तासे पकड़ रखा है!

सब जग ईस्वररूप है, भलो बुरो नहिं कोय।
जाकी जैसी भावना, तैसो ही फल होय॥

जो सच्चे हृदयसे परमात्माकी प्राप्ति चाहता है, उसकी पूरी दुनिया सेवा करती है। उसको भगवान्‌की तरफसे सहायता मिलती है, सन्तोंकी तरफसे सहायता मिलती है, धर्मकी तरफसे सहायता मिलती है, शास्त्रकी तरफसे सहायता मिलती है! जो डाकू दूसरोंको लूटते हैं, वे भी सन्तोंकी सेवा करते हैं।

हमारे-जैसे कई साधु हैं, जो अपने पास कुछ नहीं रखते, उनका भी पालन होता है!

*** *** ***

श्रोता—भगवान् सर्वसमर्थ हैं तो फिर हमारी मन-बुद्धि-इन्द्रियोंको अपनी तरफ ही क्यों नहीं लगा लेते?

स्वामीजी—जो भले आदमी होते हैं, वे किसीपर जबर्दस्ती नहीं करते। जो खराब आदमी होते हैं, चोर-डाकू होते हैं, वे जबर्दस्ती करते हैं। भगवान् तो भले आदमियोंके शिरोमणि हैं। भले आदमियोंका यह कायदा है कि वे किसीके अधिकारको छीनते नहीं। इसलिये आपकी स्वतन्त्रताको भगवान् छीनते नहीं। आप ज्यादा गरज करोगे तो आपकी सुनवाई कर देंगे, नहीं तो नहीं करेंगे, भले ही आपको कितनी ही बाधा हो!

यह बात सबको समझ लेनी चाहिये कि भगवान् अच्छे आदमियोंके शिरोमणि हैं, और अच्छा आदमी किसीपर अपना अधिकार नहीं जमाता, किसीके अधिकारको नहीं छीनता। लाखों गायें मारी जा रही हैं तो क्या यह भगवान्से छिपा हुआ है? परन्तु कलियुगको जो अधिकार मिला है, उसको भगवान् छीनते नहीं। अगर कोई पुकारे कि रक्षा करो तो भगवान् जरूर रक्षा करेंगे।

क्या आप हृदयसे चाहते हो कि भगवान् मेरेपर कृपा करके मेरी स्वतन्त्रता छीन लें, मन-बुद्धि-इन्द्रियोंको अपनी तरफ लगा लें?

श्रोता—यदि हमसे कोई पाप हो गया हो तो उसका क्या प्रायश्चित्त करें?

स्वामीजी—'हे नाथ! हे नाथ!' भगवान्को पुकारो और राम-राम करो। गंगा-स्नान, एकादशी आदि व्रत और रामका नाम—यह ज्ञात-अज्ञात सब पापोंका सामान्य प्रायश्चित्त है।

*** *** ***

श्रोता—आप अपने मनकी बात सुनाओ।

स्वामीजी—हमारे मनमें यह बात है कि 'हे नाथ! हे मेरे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं। हे मेरे स्वामिन्! ऐसी कृपा करो कि मैं आपको भूलूँ नहीं'। यह एक ही बात पकड़ लो, फिर सब काम सिद्ध हो जायगा!

अच्छा अवसर मिलनेपर भी, अच्छा संग मिलनेपर भी, अच्छी बातें मिलनेपर भी भीतर भोगोंकी आशा रहती है—यह बहुत नीची बात है! संसारके भोग ओस-कणके समान हैं। उनसे प्यास नहीं बुझेगी। गोस्वामीजी कहते हैं—

ऐसी मूढ़ता या मन की।
परिहरि राम-भगति-सुरसरिता, आस करत ओसकन की॥

(विनयपत्रिका ९०)

'इस मनकी ऐसी मूर्खता है कि यह राम-भक्तिरूपी गंगाजीको छोड़कर ओसकी बूँदोंसे तृप्त होनेकी आशा करता है।'

सब भाई-बहन भगवान्से उनके चरणोंकी भक्ति माँगो कि 'हे नाथ! आपके चरणोंमें मेरा प्रेम हो जाय'। प्रेम माँगनेकी चीज है। इसको भगवान्से माँगना चाहिये। भगवान् श्रीरामने जब काकभुशुण्डिजीसे कहा कि तू अणिमादि सिद्धियाँ, ज्ञान, वैराग्य, मुक्ति आदि जो चाहे, सो माँग ले। तब काकभुशुण्डिजीने विचार किया कि भगवान्ने सब कुछ देनेकी बात तो कही है, पर अपनी भक्ति देनेकी बात कही

ही नहीं—*'भगति आपनी देन न कही'* (मानस, उत्तर० ८४।२)। इसलिये काकभुशुण्डिजीने और कुछ न माँगकर भक्ति ही माँगी। इससे भगवान् बड़े प्रसन्न हुए! इसलिये सब भाई-बहन भगवान्से भक्ति माँगो। भक्तिके समान कुछ नहीं है। एक भगवान्के चरणोंमें प्रेमके सिवाय और कुछ भी चाहना मत करो। भगवान्में प्रेम नहीं हुआ तो मानो कुछ नहीं हुआ।

*** *** ***

श्रोता—अन्तसमयमें भगवान् कैसे याद आयें?

स्वामीजी—*पहली बात,* हरदम भगवान्को याद रखें तो अन्तसमयमें भी भगवान्की याद आयेगी। *दूसरी बात,* भगवान्से प्रार्थना करो कि 'हे नाथ! अन्तसमयमें मैं आपको भूलूँ नहीं'। *तीसरी बात,* जो नित्य आधी रातके समय, साढ़े ग्यारह बजेसे साढ़े बारह बजेके बीच जगकर भगवान्को याद करता है, उसको अन्तसमयमें भगवान्की याद आ जाती है। ऐसी बात मैंने बालकपनेसे सुनी है।

मैंने एक व्यक्तिसे पूछा कि अगर आपकी मोटर खराब हो जाय तो? वह बोला कि इसका मैंने बीमा करा रखा है। खराब हो जायगी तो उसका रुपया मिल जायगा। इसी तरह जो हर समय भगवान्को याद करता है, उसका बीमा हो जाता है। कारण कि हर समयमें ही तो अन्तसमय आयेगा!

आप इस पंचामृतको याद कर लो—१) मैं भगवान्का हूँ, २) भगवान्के दरबारमें रहता हूँ, ३) भगवान्का काम करता हूँ, ४) भगवान्का प्रसाद (भोजन) पाता हूँ, और ५) भगवान्के दिये प्रसादसे भगवान्के जनोंकी सेवा करता हूँ। इसको लिखकर अपने घरमें टाँग दो। इस पंचामृतकी एक-एक बात बड़ी विलक्षण है। इसको मान लो तो आपको हरदम भगवान्की याद रहेगी।

जैसे कन्या ससुरालकी हो जाती है, ऐसे आप भगवान्के ही हो जाओ तो फिर भगवान्की याद स्वत: आयेगी, करनी नहीं पड़ेगी।

श्रोता—क्रोधके कारण अपनेसे बड़ोंका अपमान हो गया! अब उनका शरीर नहीं रहा। क्या करना चाहिये?

स्वामीजी—उनको सुबह-शाम याद करके मनसे उनके चरणोंमें प्रणाम करो और उनसे माफी माँगो। माफी वास्तवमें भगवान् करते हैं।

*** *** ***

श्रोता—आप तत्काल परमात्माकी प्राप्तिकी बात कहते हैं तो वह कैसे होगी?

स्वामीजी—यह संसार भगवान् है—ऐसा माननेसे होगी। सब भगवान् हैं—इसको स्वीकार कर लो तो यह तत्काल प्राप्ति है। इसको स्वीकार करके प्रसन्न हो जाओ, इसमें मस्त हो जाओ कि आज हमारा प्रश्न हल हो गया! मौज हो गयी! जैसे आपने मान लिया कि यह नदी गंगाजी है, ऐसे ही मान लो कि यह सब भगवान् है। अगर कोई भगवान्की प्राप्ति चाहता हो और उसको यह बात मिल जाय तो वह प्रसन्न होकर नाचने लग जायगा कि बात मिल गयी! स्वयं भगवान्के वचन हैं—**'वासुदेवः सर्वम्'** (गीता ७। १९)।

श्रोता—कभी-कभी तो ऐसा अनुभव होता है कि बहुत अच्छी स्थिति है, पर कभी बहुत गिरावट आ जाती है और स्थितिमें, भावमें फर्क आ जाता है! क्या कारण है, समझमें नहीं आ रहा है?

स्वामीजी—सरदीकी ऋतुमें कभी सरदी ज्यादा पड़ती है, कभी कम पड़ती है। गरमीकी ऋतुमें कभी गरमी ज्यादा पड़ती है, कभी कम पड़ती है। वर्षाऋतुमें कभी वर्षा ज्यादा होती है, कभी कम

होती है। इस तरह जैसे एक ऋतुमें भी एक समान स्थिति नहीं रहती, ऐसे ही अन्तःकारणकी वृत्तियाँ भी एक समान नहीं रहतीं, प्रत्युत कभी सात्त्विक, कभी राजसी, कभी तामसी वृत्तियाँ आती-जाती रहती हैं। उन वृत्तियोंकी परवाह नहीं करनी चाहिये।

एक बात है, आप ध्यान दो। कृपा करके आप अपने मनकी कल्पना मत करो। ऐसा होना चाहिये, ऐसा नहीं होना चाहिये—ऐसा मत करो। तात्पर्य है कि एक भगवान् हैं—इसके सिवाय दूसरी कल्पना मत करो। मन लगे, चाहे न लगे, इसकी परवाह मत करो। फिर भगवान् अपने-आप सँभालेंगे। मनचाही कल्पना मत करो कि भगवान् ऐसे होने चाहिये, इस रूपसे होने चाहिये। अपना कुछ भी आग्रह मत रखो। सब काम ठीक हो जायगा—इसमें सन्देह नहीं है। अपनी सब कल्पना छोड़कर 'यह सब भगवान् ही है' इसमें मस्त हो जाओ। **अपने मनचाहे भगवान्‌के मिलनेमें देरी लगती है, पर सबको भगवान् माने तो देरी नहीं लगती।** अगर किसीका मन नहीं लगता, मनमें शान्ति नहीं है तो वह 'सब भगवान् ही है' इस बातको मान ले तो शान्ति मिल जायगी!

दूसरोंको भगवान्‌में लगाना हाथकी बात नहीं है, पर आप पूरी तरह भगवान्‌में लग जाओ तो संसारमात्रको भगवान्‌में लगानेका माहात्म्य हो जायगा! आपके द्वारा संसारमात्रकी बड़ी भारी सेवा हो जायगी!

*** *** ***

श्रोता—भगवान्‌के जिस स्वरूपका हम चिन्तन और ध्यान करते हैं, उस स्वरूपमें क्या भगवान् प्रत्यक्ष दर्शन दे सकते हैं?

स्वामीजी—जिस रूपका आप ध्यान करते हो, पहले उसी रूपसे भगवान् दर्शन देंगे। दर्शन देकर फिर अपना वास्तविक स्वरूप अपने-आप दिखा देंगे।

श्रोता—कर्तव्य-कर्म पहले करें या सत्संग पहले करें?

स्वामीजी—दोनों ही करनेयोग्य हैं। कोई पूछे कि रोटी खायें या पानी पीयें? दोनों ही करो, रोटी भी खाओ और पानी भी पीओ। सत्संग कर्तव्यको पुष्ट करता है और कर्तव्य सत्संगको पुष्ट करता है। दोनों ही एक-दूसरेको पुष्ट करनेवाले हैं।

*** *** ***

श्रोता—गीताका प्रचार कैसे करें?

स्वामीजी—गीताका प्रचार करना हो तो पहले गीताको पढ़ो, समझो और आचरणमें लाओ। गीतामें लिखी हुई बातोंका खुद अनुभव करो। जैसे, पहले ज्ञानयोगका वर्णन है, इसके बाद धर्मनिष्ठा है, इसके बाद कर्मयोग है, इसके बाद भक्तियोग है। इसका अनुभव करके धर्मनिष्ठ बन जाओ, ज्ञानी बन जाओ, योगी बन जाओ, भक्त बन जाओ। ज्यों गीताके अनुसार आपका अनुभव होगा, त्यों ही प्रचार बढ़िया होगा। गीता स्वाभाविक आपके जीवनमें होनी चाहिये। आपके आचरण, आपके भाव, आपकी दिनचर्या गीताके अनुसार हो, फिर सब ठीक हो जायगा। गीताकी जीती-जागती मूर्ति बन जाओ। फिर गीताका बढ़िया प्रचार होगा।

श्रोता—गीताके अनुसार जीवन कैसे बने?

स्वामीजी—निष्कामभाव होना चाहिये। दो बातें मान लो—मेरा कुछ नहीं है और मेरेको कुछ नहीं चाहिये। ये दोनों बातें बहुत दामी हैं!

श्रोता—आप गीताजीके चौथे अध्यायके पाँच श्लोकों (४। ६-१०)-के नित्य पाठकी प्रेरणा करते

हैं। इनमें क्या विशेषता है?*

स्वामीजी—इन श्लोकोंमें भगवान्‌ने अपने अवतारकी बात कही है। भगवान् अवताररूपसे प्रकट होते हैं। मेरेको ये श्लोक बहुत अच्छे लगे हैं। इन श्लोकोंको याद कर लो। छोटे बालक बिना समझे भी इनका पाठ करें तो उनको भी लाभ होगा।

जो आदर एवं श्रद्धापूर्वक गीताका पाठ करता है, उसको अन्तसमयमें भगवान् याद आते हैं। उसको भगवान्‌की विशेष कृपा प्राप्त होती है। एक गीता ऐसा ग्रन्थ है, जिसका माहात्म्य मूल ग्रन्थसे भी अधिक है! गीताके सात सौ श्लोक हैं, पर उसके पद्मपुराणोक्त माहात्म्यके श्लोक एक हजारसे भी अधिक हैं!

*** *** ***

श्रोता—आपने कहा कि भगवान्‌के दर्शन आज ही हो सकते हैं, तो हम क्या करें जिससे भगवान्‌के दर्शन हो जायँ?

स्वामीजी—'हे नाथ! हे नाथ!' पुकारो। पुकारना सबसे बढ़िया है। आर्तभावसे, रो करके 'हे नाथ, मिलो! हे नाथ, मिलो!' पुकारो। रोते ही रहो, पुकार करते ही रहो! कितने ही दिन लग जायँ, अपना रोना बन्द करो ही मत। अवश्य लाभ होगा, सब ठीक हो जायगा!

श्रोता—घरमें बहुत विक्षेप होता है, भजनमें कैसे एकाग्र हों?

स्वामीजी—विक्षेप आपके साथ है, घरके कारण नहीं है। आप घर छोड़कर साधु हो जाओ तो भी विक्षेप छूटेगा नहीं। वह आपके साथ चलेगा। साधु होनेपर भी शान्ति नहीं मिलेगी। ऐसा मैंने देखा है। **संसारका सम्बन्ध छोड़कर भगवान्‌के साथ सम्बन्ध रखो तो शान्ति मिलेगी, नहीं तो साधु हो जाओ अथवा गृहस्थमें रहो, शान्ति नहीं मिलेगी।** जिसका भगवान्‌में मन नहीं लगता, उसका कहीं भी मन नहीं लगेगा।

भगवान् तो अपने हैं। उनके सिवाय और कोई अपना नहीं है। जो कभी हो, कभी न हो, वह अपना नहीं होता। कहीं हो, कहीं न हो, वह अपना नहीं होता। किसीका हो, किसीका न हो, वह अपना नहीं होता। भगवान् सब समयमें हैं, सब जगह हैं, सबके हैं। उन भगवान्‌को अपना मानो और उनकी आवश्यकताका अनुभव करो। जिन लोगोंने रुपयोंकी आवश्यकता समझी है, उनको उम्रभर कभी शान्ति नहीं मिलती। वे रुपया-रुपया करते मर जायँगे, पर शान्ति नहीं मिलेगी! आप मानो, चाहे मत मानो, जो भोगोंमें तथा रुपयोंमें लगे हुए हैं, उनको कभी शान्ति नहीं मिलेगी.....नहीं मिलेगी.....नहीं मिलेगी!!

---

*अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥
जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥
वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः॥

कई लोग सत्संगमें आकर भी कुसंग करते हैं! ऐसे लोगोंकी क्या दशा होगी, भगवान् जाने! सत्संगमें अच्छे गुणोंका वर्णन हो तो वे उनको अपनेमें देखते हैं, और अवगुणोंका वर्णन हो तो उनको दूसरोंमें देखते हैं कि वह यों करता है, वह यों करता है! यह सत्संगमें कुसंग है।

अगर अपना कल्याण चाहो तो किसीका न गुण देखो, न दोष देखो, प्रत्युत भगवान्‌को देखो—'**गुणदोषदृशिर्दोषो गुणस्तूभयवर्जितः**' (श्रीमद्भा० ११। १९। ४५) गुणों और दोषोंको देखना ही सबसे बड़ा दोष है, और उन दोनोंको न देखना ही सबसे बड़ा गुण है। गुण-दोष न देखकर भगवान्‌को देखो तो निहाल हो जाओगे!

सुनहु तात माया कृत गुन अरु दोष अनेक।
गुन यह उभय न देखिअहिं देखिअ सो अबिबेक॥

(मानस, उत्तर० ४१)

'हे तात! सुनो, मायासे रचे हुए ही अनेक गुण और दोष हैं। गुण इसीमें है कि दोनों ही न देखे जायँ। इन्हें देखना ही अविवेक है।'

कौन कैसा है, क्या करता है—इस तरफ न देखकर भगवान्‌के भजनमें लग जाओ। दुनियामें तो सब तरहके लोग होते हैं, बगीचेमें सब तरहके फूल होते हैं, हमें तो अपना कल्याण करना है।

तेरे भावै जो करौ, भलौ बुरौ संसार।
'नारायन' तू बैठि के, अपनौ भुवन बुहार॥

श्रोता—भगवान्‌की पूजा करना और 'राम-राम' करना—इन दोनोंमें कौन-सा ज्यादा बढ़िया है?

स्वामीजी—जिसमें आपका मन ज्यादा लगे, वह बढ़िया है। पूजा करनेमें मन लगे तो पूजा बढ़िया है, और नामजप करनेमें मन लगे तो नामजप बढ़िया है।

*** *** ***

श्रोता—संसार निरन्तर छूट रहा है, यह तो स्पष्ट अनुभव होता है; परन्तु भगवान् हमेशा हमारे साथ रहते हैं, यह अनुभव नहीं होता! यह कैसे अनुभव हो?

स्वामीजी—भगवान् हरदम हमारे साथ रहते हैं—यह मान लो। जैसे माँ-बापको मानना ही पड़ता है, देख नहीं सकते, ऐसे ही भगवान्‌को मानना ही पड़ता है। जब एक माँ-बापको भी देख नहीं सकते, तो फिर जगत्मात्रके माँ-बापको कैसे देख (जान) लोगे? आपका जन्म इस माँसे हुआ है—ऐसा आपने देखा नहीं है, फिर भी उसको अपनी माँ मानते हैं। इसी तरह भगवान्‌को भी मान लो। उनको मान ही सकते हैं, जान नहीं सकते।

श्रोता—कोई ऐसा उपाय बताएँ कि भगवान्‌में प्रेम हो जाय।

स्वामीजी—संसारसे मोह छोड़ो। संसारमें मन लगा हुआ है तो भाई, भगवान्‌में कैसे लगेगा? भगवान्‌से प्रार्थना करो कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'।

श्रोता—संसारका मोह कैसे छूटे?

स्वामीजी—'हे नाथ! हे मेरे नाथ!' ऐसे भगवान्‌को पुकारनेसे छूटेगा। हृदयसे पुकारो। भगवान्‌की कृपासे छूटेगा। भगवान्‌के सिवाय अन्य कोई सहारा नहीं हो। उनको 'हे नाथ! हे नाथ!' पुकारो तो सब काम ठीक हो जायगा।

*** *** ***

श्रोता—जो बोल नहीं सकता, सुन नहीं सकता, देख नहीं सकता, ऐसे मरणासन्न व्यक्तिके लिये क्या करना चाहिये?

स्वामीजी—उसको भगवन्नाम सुनाओ। जहाँ नाम-कीर्तन होता है, वहाँ यमदूत नहीं आते। अगर उसको चेत हो तो गीताजीका आठवाँ अध्याय भी सुनाओ। किसीको अन्तसमयमें भगवन्नाम सुनाना बहुत बड़ा उपकार है, बड़ा भारी पुण्य है! अगर रोगीको नींद आती हो, तब धीरे बोलो; क्योंकि नींदमें आराम मिलता है।

शरीर शान्त होनेके बाद भी एक-आध घण्टे नाम-कीर्तन करते रहना चाहिये। शव उठानेमें जल्दी नहीं करनी चाहिये। शवको ले जानेकी और सब तैयारी करो, पर जल्दी मत उठाओ। कारण कि कभी-कभी ऐसा होता है कि हमारी दृष्टिमें उसके प्राण चले गये, पर उसके भीतर प्राण रहते हैं। शव उठानेपर भी नाम-कीर्तन होते रहना चाहिये। उसके निमित्त नारायणबलि आदि शास्त्रीय कर्म भी जरूर करने चाहिये। कुटुम्बियोंको उसके नामसे माला फेरनी चाहिये, नामजप करके उसके अर्पण करना चाहिये। कलियुगमें नामजपकी विशेष महिमा है।

चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ। कलि बिसेषि नहिं आन उपाऊ॥

(मानस, बाल० २२। ४)

‘यों तो चारों युगोंमें और चारों ही वेदोंमें नामका प्रभाव है; परन्तु कलियुगमें विशेषरूपसे है। इसमें तो (नामको छोड़कर) दूसरा कोई उपाय ही नहीं है।’

श्रोता—ऐसी बात आयी है कि गंगाजीमें अस्थियाँ प्रवाहित करनेसे उस व्यक्तिकी मुक्ति हो जाती है, तो वास्तवमें मुक्ति हो जाती है या गति हो जाती है?

स्वामीजी—यह मरनेवालेके भावके अनुसार होता है। उसका गंगाजीमें विशेष भाव है तो मुक्ति भी हो सकती है।

श्रोता—अगर मरनेवाला गंगाजीको मानता ही नहीं हो, तो?

स्वामीजी—गंगाजीकी बहुत महिमा है, पर वह माननेवालोंके लिये है। उसका जितना आदर करेंगे, उतना लाभ जरूर होगा, इसमें सन्देह नहीं है। एक आदमी था। वह गंगाजीकी निन्दा किया करता था और गंगाजीमें जानेवाले आदमियोंके लिये कहता था कि ये बेसमझ आदमी हैं, पानीमें क्या पड़ा है! जब वह मर गया तो उसके बेटेने अपने पिताकी अस्थियोंको एक लोटेमें डालकर अच्छी तरह बन्द कर दिया और गंगाजी जानेवालेको देकर कह दिया कि यह गंगाजीमें प्रवाहित कर देना। उसने गंगाजी जाकर उस लोटेको गंगाजीमें, ब्रह्मकुण्डमें डाल दिया। एक आदमी वहाँ स्नान करने आया तो वह लोटा उसके पैरोंमें लगा। उसने समझा कि इस लोटेमें कोई धन होगा। पर वह उस लोटेको कहाँ खोले कि दूसरा कोई देखे नहीं! वह लोटेको लेकर शौचालयमें गया। वहाँ उसने लोटेको खोला तो उसमें अस्थियाँ मिलीं। उसने उनको वहीं शौचालयमें गिरा दिया और लोटा अपने पास रख लिया! लोटेपर नाम खुदा हुआ था। संयोगसे वह आदमी उसी गाँवका था। मृत व्यक्तिके घरवालोंने वह लोटा देखा तो पूछा कि यह तुम कहाँसे लाये? उसने बताया कि मेरेको तो यह गंगाजीमें मिला। इसमें जो कुछ था, उसको तो मैंने शौचालयमें डाल दिया! यह बीती हुई घटना किसीने मेरेको सुनायी! तात्पर्य है कि **जो जिस वस्तुकी निन्दा, तिरस्कार करता है, वह उस वस्तुसे लाभ नहीं उठा सकता।**

जो भगवन्नामकी निन्दा, तिरस्कार करता हो, उसको भगवन्नाम नहीं सुनाना चाहिये।

*** *** ***

श्रोता—निराकारकी भक्तिके बारेमें बतानेकी कृपा करें।

स्वामीजी—एक परमात्मा सब जगह 'है'-रूपसे परिपूर्ण है। यह 'है' का ध्यान बहुत ही बढ़िया है। वह सबके भीतर-बाहर समान रीतिसे परिपूर्ण है। एक श्लोक आता है—

अन्तःपूर्णो बहिःपूर्णः पूर्णकुम्भ इवार्णवे।
अन्तःशून्यो बहिःशून्यः शून्यकुम्भ इवाम्बरे॥

(मैत्रेय्युपनिषद् २। २७)

जैसे समुद्रमें घड़ा पड़ा हो तो उसके भीतर भी जल है और बाहर भी जल है, और जैसे खाली पड़े घड़ेके भीतर भी शून्य है और बाहर भी शून्य है, ऐसे ही परमात्मा (समुद्र तथा आकाशकी तरह) बाहर-भीतर सब जगह परिपूर्ण है। गीतामें आया है—

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत्॥

(गीता १३। १५)

'वे परमात्मा सम्पूर्ण प्राणियोंके बाहर-भीतर परिपूर्ण हैं और चर-अचर प्राणियोंके रूपमें भी वे ही हैं एवं दूर-से-दूर तथा नजदीक-से-नजदीक भी वे ही हैं और वे अत्यन्त सूक्ष्म होनेसे जाननेमें नहीं आते।'

परमात्मा मात्र प्राणियोंके अन्तःकरणमें विद्यमान हैं—'**सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टः**' (गीता १५। १५)। सब जगह तथा सबमें परमात्माको देखना निराकारकी उपासना करनेवालोंके लिये बहुत बढ़िया है। इसको केवल याद रखना है। यह बहुत बढ़िया ध्यान है।

आपकी जिम्मेवारी इतनी ही है कि 'सब भगवान् हैं'—इसको केवल याद रखो। फिर सब काम ठीक हो जायगा।

*** *** ***

श्रोता—बुरे कर्म भी बाँधनेवाले होते हैं और अच्छे कर्म भी बाँधनेवाले होते हैं, तो क्या मुक्ति चाहनेवालेको अच्छे कर्म भी नहीं करने चाहिये?

स्वामीजी—सकामभावसे शुभ कर्म करनेपर बन्धन होता है। अगर निष्कामभावसे तथा भगवान्‌को अर्पण करके शुभ कर्म करें तो बन्धन नहीं होता। निष्कामभाव हो और भगवान्‌के अर्पण किये जायँ तो शुभ कर्म ही होते हैं, अशुभ कर्म होते ही नहीं।

श्रोता—निराकारकी उपासना करनेवालेको क्या भगवान्‌के मन्दिरमें जाना चाहिये?

स्वामीजी—जरूर जाना चाहिये। जो निराकार है, वही मन्दिरमें साकार है। जैसे यह प्रकाश निराकार है और सूर्य साकार है, तो दोनों एक ही हैं, दो नहीं हैं। ऐसे ही निराकार और साकार एक ही चीज हैं, दो चीज नहीं हैं।

श्रोता—अगर भाव न होनेके कारण निराकारका उपासक मन्दिरमें नहीं जाय तो दोष तो नहीं लगेगा?

स्वामीजी—भले ही मत जाओ, पर साकारकी निन्दा मत करो, खण्डन मत करो। फिर दोष नहीं लगेगा। जहाँ मन लगे, वहाँ जाओ।

श्रोता—अगर किसीके प्राण नींदमें ही चले गये तो उसकी कौन-सी गति होगी?

स्वामीजी—**प्राण नींदमें नहीं जाते। चेत होकर ही प्राण जाते हैं।** अतः चेतके समय जो चिन्तन

होता है, उस चिन्तनके अनुसार गति होती है। किसीकी तीन-चार दिन मूर्च्छा रहे, पर प्राण जाते समय मूर्च्छा खुलती है।

श्रोता—आज हनुमज्जयन्ती है। इस विषयमें कुछ बतानेकी कृपा करें।

स्वामीजी—हनुमान्‌जीका नाम लेनेसे हनुमान्‌जी इतने प्रसन्न नहीं होते, जितने राम-नाम लेनेसे प्रसन्न होते हैं। राम-नाम सुनानेसे हनुमान्‌जी बड़े राजी होते हैं। इसलिये उनको राम-नाम सुनाओ।

जितने रामजीके मन्दिर हैं, उनमें तो हनुमान्‌जी होते ही हैं, उनके सिवाय अकेले हनुमान्‌जीके भी मन्दिर होते हैं! इसलिये कहा है—*'राम ते अधिक राम कर दासा'* (मानस, उत्तर० १२०। ८)।

*** *** ***

श्रोता—भगवान्‌का अंश शुद्ध चेतन आत्मा कैसे मायाके वशमें हो गया? ऐसी कौन-सी शक्ति है, जिसने इसको मायाके वशमें डाल दिया? अब हम कैसे इससे मुक्त हों?

स्वामीजी—आदमी ठगके वशमें हो जाता है तो ठग कोई विशेष जानकार नहीं होता। विशेष जानकार न होते हुए भी वह बड़े-बड़े लखपति-करोड़पतिको भी ठग लेता है! इसी तरहसे मायाका जाल है, जिससे जीव ठगाईमें आ जाता है। ठगाईमें आनेका कारण है कि उसके भीतर सुखका लोभ होता है। सुखका वहम होता है, पर पूरा सुख मिलता नहीं। **एक विशेष ध्यान देनेकी बात है कि अगर आप साधनमें ऊँचा बढ़ना चाहते हो तो सुखको लात मारो! मनमें सुखकी लोलुपता रहेगी तो ऊँचे नहीं बढ़ोगे।** साधनमें ऊँचा न बढ़नेका कारण सुखका लोभ है। सुखकी लोलुपता साधनमें बहुत बाधक है.....बहुत बाधक है!!

त्यागका भी एक सुख होता है, जो इतना बाधक नहीं होता; परन्तु उस सुखकी भी लोलुपता नहीं करनी है। त्यागका भी सुख लेनेसे साधक अटक जाता है! त्यागका सुख ऊँची स्थिति नहीं होने देता। अच्छे-अच्छे साधकोंको भी अटका देता है! इसलिये सुख-लोलुपतासे बचो। सुख मिले चाहे न मिले, भगवान् याद रहने चाहिये। जितने भगवान् याद रहेंगे, उतना आपको लाभ होगा।

साधनजन्य सुख भी लेना नहीं चाहिये। वह भी आपको अटका देगा। एक भगवान्‌का सम्बन्ध उद्धार करनेवाला है, बाकी सब सम्बन्ध अटकानेवाले हैं। यह बात जल्दी समझमें नहीं आती! किसीसे भी सम्बन्ध जोड़ना भगवान्‌के सम्बन्धमें बाधक है। जिसने चेला-चेली बना लिये और उसमें राजी हो गया तो वह परमात्माकी तरफ नहीं चल सकेगा, अटक जायगा। अत: जहाँतक बने, साधकको व्यक्ति, वस्तु और क्रियासे सुख नहीं लेना चाहिये। इनसे सुख लेनेसे वह मायाके सुखमें फँसेगा। इसलिये अगर आध्यात्मिक उन्नति चाहते हो तो सुख-लोलुपतामें मत फँसो, सावधान रहो। **सुख लेनेसे बहुत ऊँची स्थिति होनेपर भी परमात्माकी प्राप्ति नहीं होती, पूर्णता नहीं होती।** सुख मत लो और 'हे नाथ! हे नाथ!' पुकारते रहो तो भगवान् जरूर रक्षा करेंगे। प्रार्थना साधनमें बड़ी सहायक होती है।

परमात्माकी प्राप्ति चाहनेवालेको खर्चा कम करना चाहिये। ज्यादा खर्चा मत करो, साधारण रीतिसे चलो। सेठजीने कहा था कि भले ही आप धनी आदमी हों, पर सत्संगमें ज्यादा खर्च मत करो। कारण यह है कि आपका अन्तमें हिसाब होगा कि सत्संगमें गये तो इतना खर्च हुआ, तो 'सत्संगमें जानेसे ज्यादा खर्च होता है'—यह भाव होनेसे सत्संगमें बाधा लग जायगी। इसलिये यहाँ सत्संगमें आओ तो दान-पुण्य ज्यादा मत करो। और जगह करो, पर सत्संगमें नहीं। सत्संगसे जितना लाभ होता है, उतना दान-पुण्यसे नहीं होता।

ब्राह्मणोंको चाहिये कि जहाँतक बने, मुफ्तमें चीज मत लो। मुफ्तमें चीज लेनेसे कर्जा बढ़ेगा और

परमात्माकी प्राप्ति होनेमें बाधा लगेगी।

***　　　　***　　　　***

श्रोता—अनजानमें बचपनमें दूसरोंकी इच्छासे पाप बन गये, जो मुझे बार-बार याद आते हैं। उनसे कैसे छुटकारा मिले?

स्वामीजी—आप भगवान्‌में लग जाओ तो उनसे छुटकारा मिल जायगा। उनको याद ही मत करो। वह अवस्था अब है ही नहीं। किसीकी भी वह अवस्था अब नहीं है। अब अवस्था दूसरी है। अब वह राज्य नहीं है। आपका हमारा अब दूसरा राज्य है। बालकपनमें हम संसारके होकर काम करते थे। अब हम संसारके नहीं हैं, हम भगवान्‌के हैं। यह बात सब भाई-बहनोंको समझनी चाहिये। हम भगवान्‌के हैं—यह सबको मान लेना चाहिये। पहलेकी अवस्थाको याद ही मत करो। उत्तम कर्म भी नहीं रहते, फिर अधम कर्म कैसे रहेंगे? कई जन्मोंमें कई तरहका पाप हुआ है, पर वह अब नहीं है। अब हम वे (पहलेवाले) नहीं हैं, हम और हो गये—यह बात मात्र भाई-बहनोंको मान लेनी चाहिये। कृपा करके यह बात मान लो कि हम भगवान्‌के हैं।

अपरा (जड़) प्रकृतिके साथ सम्बन्ध ही अनर्थका कारण है। हमारा वास्तविक सम्बन्ध भगवान्‌के साथ है। यह दो बातें दृढ़तासे मान लो कि संसारमें मेरा कुछ नहीं है और मेरेको कुछ नहीं चाहिये। इन दो बातोंमें सब बातें आ जायँगी! ये दो बातें मान लो तो आप निहाल हो जाओगे! **प्रकृतिका किंचिन्मात्र भी सम्बन्ध जोड़ लेनेसे पतन होता है।** हमारा सम्बन्ध भगवान्‌से है। हम भगवान्‌के हैं, भगवान् हमारे हैं।

श्रोता—मरनेसे पहले भगवान् मिलेंगे अथवा मरनेके बाद भगवान् मिलेंगे—दोनोंमेंसे कौन-सी धारणा बढ़िया है?

स्वामीजी—भगवान् आज, अभी मिलेंगे! भगवान् भी तैयार और हम भी तैयार, फिर देरी किस बातकी? वास्तवमें जो मिलते हैं, भगवान् ही मिलते हैं! ***'बन गये आप अकेले सब कुछ, नाम धरा संसार'***। अनेक रूपसे हमारे प्रभु ही मिलते हैं!

हम भगवान्‌के हैं, भगवान् हमारे हैं—ऐसा मानकर हरदम मस्त रहो!

***　　　　***　　　　***

श्रोता—जप करनेसे भगवान्‌में प्रेम, भक्ति प्राप्त होकर कल्याण हो जायगा क्या?

स्वामीजी—जपरूपी क्रियासे प्रेमकी प्राप्ति नहीं होगी। जपके साथ भाव रखो तो प्रेम होगा। क्रियाका जप बहुत कर लोगे तो भी प्रेम नहीं होगा। भावपूर्वक 'हे नाथ! हे नाथ!' कहते हुए मानो साक्षात् भगवान् दीखें और उनके चरणोंमें प्रेमभाव करके जप करो तो प्रेम प्राप्त होगा, केवल क्रियासे नहीं होगा। क्रिया और पदार्थ प्रकृति है। **प्रकृतिके सहारेसे भगवान्‌में प्रेम नहीं होता। प्रकृतिके त्यागसे प्रेम होता है। भगवान् मेरे हैं—इस मेरेपनसे, अपनेपनसे प्रेम होता है।** अपनेपनमें शक्ति है, क्रियामें शक्ति नहीं है। हाँ, न करनेसे तो करना अच्छा है—**'अकरणात् मन्दकरणं श्रेयः'**; परन्तु प्रेम प्रकट करनेकी ताकत क्रियामें नहीं है। आप प्रकृतिसे ऊँचे उठकर भगवान्‌में प्रेम करो। 'हे नाथ! हे नाथ!' कहते ही हृदय द्रवित हो जाय। तब प्रेम होगा। क्रिया और पदार्थके जोरसे प्रेम नहीं होगा। 'माँ-माँ' कहनेमें ताकत नहीं है, प्रत्युत 'मेरी माँ है'—इस मेरेपनमें ताकत है। इसी तरह 'मेरे भगवान् हैं'—इसमें ताकत है। जैसे, मीराबाईने कहा है—***'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई'***।

मैं भगवान्‌का हूँ, भगवान् मेरे हैं—यह सम्बन्ध भगवान्‌को पकड़ता है, परवश कर देता है! भगवान्‌के

सिवाय मेरा कोई नहीं है। नाशवान्‌को अपना मानना बहुत बड़ी बाधा है। नाशवान् शरीरोंको, पदार्थोंको, रुपये-पैसोंको, मान-आदर-सत्कारको जो महत्त्व दिया है, यह परमात्माके प्रेममें बाधक है। ये सब पासमें रहते हुए भी इनको महत्त्व मत दो। रामायणमें भगवान् कहते हैं—

जननी जनक बंधु सुत दारा। तनु धनु भवन सुहृद परिवारा॥
सब कै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बाँध बरि डोरी॥

(मानस, सुन्दर० ४८। २-३)

'माता, पिता, भाई, पुत्र, स्त्री, शरीर, धन, घर, मित्र और परिवार—इन सबके ममतारूपी तागोंको बटोरकर और उन सबकी एक डोरी बटकर उसके द्वारा जो अपने मनको मेरे चरणोंमें बाँध देता है, वह भक्त मुझे परमप्रिय है।'

भगवान्‌में जो प्रियता, आत्मीयता होती है, अपनापन होता है, वह भगवान्‌को खींचता है। गोस्वामीजी कहते हैं—***'प्रेम बदौं प्रहलादहि को, जिन पाहन तें परमेस्वरु काढ़े॥'*** (कवितावली ७। १२७) 'प्रेम तो प्रह्लादका ही मानता हूँ, जिसने पत्थरमेंसे भगवान्‌को निकाल लिया!' अपनेपनमें इतनी ताकत है कि सर्वसमर्थ भगवान्‌में भी उतनी ताकत नहीं है कि आपको छोड़ दें! सेवा सबकी करो। सबको सुख पहुँचाओ, आराम पहुँचाओ, पर भीतरसे किसीको मेरा मत मानो।

श्रोता—एक आदमी एक घण्टा रामायणका पाठ करता है, और एक आदमी एक घण्टा नामजप करता है तो दोनोंमें कौन श्रेष्ठ है?

स्वामीजी—जिसमें मन ज्यादा लगे, वह श्रेष्ठ है। पाठमें ज्यादा मन लगे तो पाठ बढ़िया है, और नामजपमें ज्यादा मन लगे तो नामजप बढ़िया है। एकदम पक्की बात है! भगवान्‌में मन तल्लीन हो जाय, भगवान् मीठे लगें, वही साधन बढ़िया है। भगवान्‌के प्रेममें डूब जाय तो पाठ, जप, चिन्तन, पद-गान, कीर्तन आदि सब साधन बढ़िया हो जायँगे।

*** *** ***

श्रोता—मैं राम-नामका जप करता हूँ और ध्यान भी रामका ही करता हूँ, पर मेरे ध्यानमें बार-बार कृष्ण आते हैं! मेरा साधन सिद्ध होगा कि नहीं होगा?

स्वामीजी—कृष्ण ध्यानमें आयें तो उनका राम-जैसा ही आदर करो, पर अपनी तरफसे ध्यान रामका ही करो। कृष्ण ध्यानमें आयें तो ज्यादा प्रसन्न हो जाओ कि भगवान् अपनी मरजीसे इस रूपमें आये हैं! अपनी तरफसे फिर रामका ही ध्यान करो।

श्रोता—**'वासुदेवः सर्वम्'** स्वीकार करें तो फिर हमारा व्यवहार कैसे होगा?

स्वामीजी—बहुत बढ़िया व्यवहार होगा। सबके साथ आदरका, सत्कारका बर्ताव होगा। अगर कोई वैर रखे तो उसके साथ भी प्रेमका बर्ताव होगा। सबके साथ अपने-आप बढ़िया, सुन्दर बर्ताव होगा।

श्रोता—एक पंथवाले कहते हैं कि राम-नामका जप करनेसे मुक्ति नहीं होती!

स्वामीजी—उनसे कहो कि हमें मुक्ति चाहिये ही नहीं! हमें तो भक्ति चाहिये, मुक्ति तुम ही रखो!

श्रोता—एक बहन कहती है कि मैं भगवान्‌की पूजा करने बैठती हूँ तो मेरा मन भगवान्‌की ओर न जाकर विषयोंमें चला जाता है! मन भगवान्‌में कैसे लगे?

स्वामीजी—'हे नाथ! हे नाथ! हे मेरे नाथ! हे मेरे नाथ!'—ऐसा कहते रहो। ठीक हो जायगा। सावधान रहो, 'हे नाथ! हे नाथ!' कहना भूलो मत। सदा यह बात याद रखो तो सब ठीक हो जायगा,

इसमें सन्देह नहीं।

श्रोता—आप भगवान्‌को सर्वत्र बताते हो, पर वे हमें दिखायी तो नहीं देते!

स्वामीजी—आपको अपना मन दिखायी देता है क्या? किसीने मनको देखा हो तो बताओ। मन है कि नहीं? मन तो है, पर दिखायी देता ही नहीं। हमें तो भजन करना है, देखना है ही नहीं। भगवान् दीखें चाहे न दीखें, उनकी मरजी! भगवान्‌से जिद कर लो कि आप दीखो चाहे मत दीखो, मैं आपको छोड़ूँगा नहीं!

हाथ छुड़ाये जात हौ, निबल जानि कै मोहि।
हिरदै ते जब जाहुगे, सबल बदौंगो तोहि॥

श्रोता—अहंकारको कैसे छोड़ें? यह हमें बहुत बाधा दे रहा है!

स्वामीजी—'हे नाथ! हे मेरे नाथ! हे मेरे नाथ!' पुकारो। छूट जायगा। भगवान्‌की कृपासे सब काम होता है।

***   ***   ***

श्रोता—एक साधुका प्रश्न है कि मेरा मन स्वाध्याय करनेका रहता है। भगवत्प्राप्तिके लिये मुझे भजनपर जोर देना चाहिये या स्वाध्याय करना चाहिये?

स्वामीजी—भगवान्‌को याद रखो। जैसे भूखा आदमी अन्नका चिन्तन करता नहीं, प्रत्युत उसके द्वारा अन्नका चिन्तन होता है, प्यासा आदमी जलका चिन्तन करता नहीं, प्रत्युत चिन्तन होता है, ठण्ड लगनेपर आदमी गरम कपड़ेका चिन्तन करता नहीं, प्रत्युत चिन्तन होता है, ऐसे ही आपके द्वारा भगवान्‌का चिन्तन होने लगे, भगवान्‌की याद आने लगे। साथ ही 'हे नाथ! हे नाथ!' कहते हुए प्रार्थना करो कि 'महाराज, आपका स्वरूप मेरे चित्तसे हटे नहीं। मैं केवल आपमें ही लग जाऊँ।'

आप भजनपर जोर दो, पढ़ाईपर नहीं। पढ़ाई हमने भी की है। पढ़ाईसे भगवान् नहीं मिलते। भगवान् प्रेमसे मिलते हैं। प्रेम ऐसा हो कि भगवान्‌के बिना रहा न जाय।

श्रोता—सुबह आपने कहा था कि मैं शरीर नहीं हूँ, शरीरसे अलग हूँ। यह बात समझमें तो आती है, पर अनुभव नहीं होता। इसका अनुभव कैसे करें?

स्वामीजी—अनुभव नहीं हो तो भगवान्‌पर छोड़ दो। सोलह आना भगवान्‌पर छोड़ दो तो भगवान्‌की कृपासे समझमें आ जायगा। समझमें नहीं आये तो चिन्ता मत करो। भगवान्‌को हरदम कहते रहो।

श्रोता—आप कहते हो कि क्रियासे भगवान्‌की प्राप्ति नहीं होती, तो नामजप, तीर्थ आदि सब क्रिया ही है। फिर क्या साधन करें?

स्वामीजी—नामजप क्रिया नहीं है, उपासना है। उपासनाका अर्थ है—भगवान्‌के पासमें बैठना। नामजपके साथमें भगवान्‌का चिन्तन भी होना चाहिये। जैसे भूखेको अन्न याद आता है, प्यासेको जल याद आता है, ऐसे भगवान्‌की याद आये। याद नहीं आये तो भगवान्‌से माँगो कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। दिनभर प्रार्थना करते ही जाओ। भोजनके समय भोजन कर लो, जल पी लो और एकान्तमें जाकर बार-बार भगवान्‌से प्रार्थना करो। भगवान् कृपा करके लगन देते हैं। ज्यादा आदमियोंसे मिलो मत, बात मत करो। भगवान्‌में लगन बढ़ाओ। लगनमें शक्ति है। भगवान्‌को देखे बिना रहा न जाय—ऐसी लगन लगाओ। लगन बिना काम नहीं होगा।

***   ***   ***

मेरे नामसे रुपया इकट्ठा करना महान् पाप है! यह मेरे हृदयको जलानेवाली चीज है! आपसे प्रार्थना है कि मेरी बिक्री मत करो! मेरे नामसे रुपया इकट्ठा करनेका पाप होगा, दण्ड होगा, इसमें सन्देह नहीं है! यह माफ नहीं होगा! इससे आपका पतन होगा। कोई बचा सकता नहीं!

कोई वक्ता मेरा नाम लेकर अपना प्रचार करे तो आपलोगोंको इसका जोरसे विरोध करना चाहिये। आप उसकी सभामें ही नि:शंक होकर इसका विरोध करो, डरो मत। अन्याय करना भी अन्याय है, अन्याय सहना भी अन्याय है। आपमें ही दोष है, इसलिये आपमें संकोच रहता है, आप डरते हो! मैं कहता हूँ कि आप विरोध करो। अन्यायका विरोध करनेसे आपकी कोई हानि नहीं होगी।

*** *** ***

मेरेसे दोष दूर होते नहीं, मैं अपने भावोंको शुद्ध कर नहीं सकता—ऐसे अपनेमें निर्बलताका अनुभव करो और दु:खी हो जाओ, रोने लग जाओ। आप भले ही भगवान्‌को मत मानो, केवल दु:खी हो जाओ तो आपके दोष मिट जायँगे। भगवान्‌का यह स्वभाव नहीं है कि मुझे माने तो दु:ख दूर करूँ। यह भगवान्‌का स्वभाव है कि उनसे दूसरेका दु:ख देखा नहीं जाता। भगवान् दु:खहारी हैं, पर वे अपना प्रभाव नहीं बताते कि मैं कर रहा हूँ। वे मान-बड़ाई नहीं चाहते। परन्तु संसारके लिये दु:खी होनेपर भगवान्‌को दु:ख नहीं होता। **धन, पुत्र, सम्पत्ति, स्त्री आदिके लिये आप रो-रोकर मर जाओ तो भी भगवान् परवाह नहीं करते। परन्तु भगवत्प्राप्तिके लिये, भगवत्सम्बन्धी दु:ख हो तो वह भगवान्‌से सहा नहीं जाता।** असली दु:ख ठहरता ही नहीं! अपने कल्याणका जो दु:ख है, वह असली दु:ख है।

श्रोता—रोना तो आता नहीं!

स्वामीजी—तो फिर गरज नहीं है! अगर गरज होती तो रोना बन्द नहीं हो सकता!

*** *** ***

श्रोता—भगवान् बड़े दयालु हैं तो फिर दर्शन क्यों नहीं देते? आप उपाय बताओ, मैं सब कुछ छोड़नेको तैयार हूँ।

स्वामीजी—दर्शन नहीं देनेका तात्पर्य आपकी रुचि बढ़ानेमें है। गोपियोंके द्वारा पूछनेपर भगवान्‌ने यही कहा था कि प्रेम बढ़ानेके लिये, अपनेमें मन तल्लीन करनेके लिये ही मैं छिप जाता हूँ—**'मया परोक्षं भजता तिरोहितम्'** (श्रीमद्भा० १०। ३२। २१)।

श्रोता—सत्संगके भाव बड़े प्यारे लगते हैं, पर टिकते नहीं! टिकें कैसे?

स्वामीजी—'हे नाथ! हे नाथ!' कहकर भगवान्‌को पुकारो। भगवान्‌की कृपासे टिकेंगे। जिसकी कृपासे ऐसे भाव मिले, उसीकी कृपासे वे टिकेंगे!

श्रोता—सम्पूर्ण जीवोंमें क्या एक ही आत्मा है? अगर एक है तो फिर भेद क्यों होता है?

स्वामीजी—अनेक होते हुए भी एक है, और एक होते हुए भी अनेक है। नाना प्रकारके कर्मोंके कारण उनमें भेद दीखता है। अगर कर्मोंकी तरफ न देखकर एक भगवान्‌को देखें तो सब एक हैं।

भगवान् जैसे भक्तके हृदयमें विद्यमान हैं, सम्पूर्ण जीवोंके हृदयमें वे वैसे-के-वैसे ही विद्यमान हैं—**'सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टः'** (गीता १५। १५)। इसलिये आप भगवान्‌को अलग न मानकर अपनेमें मानो। आप सब यह बात दृढ़तासे मान लो कि मेरे हृदयमें साक्षात् परमात्मा रहते हैं। यह बहुत लाभकी बात है! भगवान्‌से ही अपनापन करो। दूसरा कोई साथमें रहनेवाला नहीं है। दूसरा कोई साथ रहता

नहीं और भगवान् छोड़ते नहीं! अत: भगवान्‌के सिवाय किसी दूसरेको अपने हृदयमें स्थान मत दो तो बहुत जल्दी कल्याण हो जायगा। दूसरे किसीको स्थान दोगे, अपना मानोगे तो देरी लगेगी।

हृदयमें भगवान् पूरे-के-पूरे रहते हैं। उनके टुकड़े नहीं होते।

*** *** ***

चाहे सर्वव्यापी निर्गुण-निराकार परमात्माका ध्यान करो, चाहे भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान करो, दोनों एक ही हैं। जैसे, सभी वस्तुएँ सूर्यके प्रकाशसे दीखती हैं तो निराकार परमात्मा प्रकाशकी तरह है, और साकार परमात्मा सूर्यकी तरह है। जैसे सूर्य और उसका प्रकाश एक ही है, ऐसे ही सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार एक ही है।

श्रोता—एक स्त्री अपनेको भगवान्‌की माँ कहकर अपना प्रचार करती है कि भगवान् मेरी सेवा करते हैं, मेरे हाथका भोजन करते हैं, और स्वामीजी भी दर्शन करने आते हैं, तो क्या हम भी दर्शन करने जायँ? हमारी तो श्रद्धा नहीं बैठ रही है!

स्वामीजी—कोई जरूरत नहीं जानेकी। बिल्कुल झूठी बातें हैं! कलियुग महाराजकी तरह-तरहकी लीलाएँ है! उसके पास कोई मत जाओ, उसके दर्शन मत करो, गंगाजी और सूर्य भगवान्‌के दर्शन करो। ये दोनों प्रकट हैं। गंगाजीमें पापोंका नाश करनेकी स्वत:-स्वाभाविक शक्ति है। जैसे सूर्यको अन्धकारका नाश करना नहीं पड़ता, स्वत: हो जाता है, ऐसे ही गंगाजीको पापोंका नाश करना नहीं पड़ता, स्वत: हो जाता है। मेरी बात मानो तो गंगाजीके दर्शनसे लाभ ज्यादा होगा, इसमें सन्देह नहीं है। कलियुगमें ऐसी झूठी, बनावटी बातें ज्यादा होती हैं। केवल ठगाई है, ठगाई!!

श्रोता—आपका परिचय देकर कई भाई, माताएँ, साधु अपना स्वार्थ सिद्ध करनेमें लगे हुए हैं, तो क्या उनको पाप लगेगा?

स्वामीजी—उनको पाप जरूर लगेगा.....लगेगा.....लगेगा! उनकी दुर्गति होगी, इसमें सन्देह नहीं है।

कलियुगमें तरह-तरहकी लीलाएँ होंगी, तरह-तरहके विघ्न आयेंगे, आप पक्के रहो! आप तत्परतासे भगवान्‌में लगे रहो।

*** *** ***

सेठजी (श्रीजयदयालजी गोयन्दका)-का कहा हुआ है कि मनुष्यको किसी भी व्यक्तिकी प्रशंसा नहीं करनी चाहिये। अपने मुखसे अपनी प्रशंसा तो बिल्कुल नहीं करनी चाहिये कि मेरा ऐसा होता है, भगवान् आते हैं, ऐसा करते हैं आदि। यह पारमार्थिक उन्नतिमें बहुत बाधक है। लोग अपना पैसा भी नहीं बताते कि कहाँ रखा है तो क्या भगवत्सम्बन्धी बातको आपने पैसोंसे भी कम कीमती समझा है? भगवत्सम्बन्धी कोई भी बात किसीको बतानी नहीं चाहिये। अगर कोई बताता है तो वह बेसमझ है। भगवत्सम्बन्धी कोई भी चमत्कार हो, उसे कहना नहीं चाहिये। कहनेसे उसमें बाधा लग जाती है। इस विषयमें कई साधकोंसे मेरी बातें हुई हैं और उन्होंने बताया कि पहले जैसा अनुभव होता था, वैसा अब नहीं होता। दूसरेको कह देनेसे फर्क पड़ जाता है, पहलेवाली वृत्ति नहीं रहती। दूसरेको कहनेसे मान-बड़ाई मुख्य हो जाती है, भगवान्‌की बात छूट जाती है! अत: दूसरेको कहनेसे बड़ा भारी नुकसान है! कहनेमात्रसे बाधा लगती है। ऐसा कभी नहीं करना चाहिये।

श्रोता—जैसे, किसी साधकको कोई विशेष अनुभूति हुई और वह आकर आपको कहे तो उसकी हानि होगी क्या?

स्वामीजी—वह किस भावसे कहता है? अगर मान-बड़ाईके लिये कहता है तो हानि होगी।

एक राजाको किसी सन्तसे कोई बढ़िया बात मिल गयी। राजाने डुग्गी पिटवायी कि किसीको बढ़िया बात मिल जाय तो क्या करना चाहिये? लोगोंसे कई तरहकी बातें आयीं। नगरमें एक साधारण व्यापार करनेवाला सेठ था। उसको ज्ञान हो गया था। उसको जब राजाका संदेश मिला तो उसने कहा कि बढ़िया बात मिल गयी तो हल्ला क्यों करते हो? राजाने उस सेठको बुलाया और कहा कि आपने बहुत बढ़िया बात बतायी, आप क्या चाहते हो? जो चाहते हो, मैं दूँगा। सेठने कहा कि फिर मेरेको बुलाना मत और आकर मेरेसे मिलना मत!

श्रोता—मैंने गुरु बनाया था। परन्तु उनके विचार शुद्ध नहीं थे, इसलिये मैंने उनको छोड़ दिया। कोई पाप तो नहीं लगेगा?

स्वामीजी—बिल्कुल पाप नहीं लगेगा।

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः।
उत्पथप्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते॥*

(महाभारत, उद्योग० १७८। ४८)

'यदि गुरु भी घमण्डमें आकर कर्तव्य और अकर्तव्यका ज्ञान खो बैठे और कुमार्गपर चलने लगे तो उसका भी त्याग कर देनेका विधान है।'

जिसका खुदका आचरण ठीक नहीं है, वह दूसरेको क्या निहाल करेगा!

*** *** ***

श्रोता—भगवान्‌को तत्त्वसे जानना क्या है—इसे सरल शब्दोंमें समझाइये।

स्वामीजी—सभी भगवान् ही हैं। भगवान्‌के सिवाय एक केश-जितनी, तिल-जितनी चीज भी दूसरी नहीं है। केवल भगवान्-ही-भगवान् हैं। जैसे, सोनेका तत्त्व सोना है, सोनेके सिवाय कुछ नहीं है। गहना दीखता है, पर है तो सोना ही। गहनोंके नाम अलग-अलग हैं, रूप अलग-अलग हैं, प्रयोग अलग-अलग हैं, तौल अलग-अलग हैं, मूल्य अलग-अलग हैं, पर तत्त्वसे एक सोना ही है। ऐसे ही तत्त्वसे सब परमात्मा ही हैं। वे ही अनेक रूपसे दीख रहे हैं। मैं, तू, यह और वह भी नहीं हैं, केवल परमात्मा हैं। इसमें कठिनता हो तो बताओ!

श्रोता—इसमें विश्वास नहीं बैठ रहा है, यही कठिनता है!

स्वामीजी—आप मान लो। इसको मानना ही पड़ेगा। आप स्त्री मानते हो, बेटा मानते हो, भाई मानते हो, जाति मानते हो तो इसको भी मान लो। जाति दीखती है क्या? आप कहते हो कि 'हम राठी हैं' तो 'राठी' दीखता है क्या? बाजरीके खेतमें बाजरी नहीं दीखती, घास दीखता है, फिर भी उसको बाजरी मानते हैं। आप बिना देखे अनेक बातोंको मानते हो तो एक परमात्माको भी मान लो। इसमें बाधा क्या है? सब बात मानते हो, पर जिससे कल्याण हो जाय, वह बात नहीं मानते! केवल

---

* कुछ ग्रन्थोंमें इस श्लोकके उत्तरार्धमें किंचित् पाठभेद मिलता है; जैसे—

उत्पथप्रतिपन्नस्य न्याय्यं भवति शासनम्॥ (महाभारत, आदि० १३९। ५४)

उत्पथप्रतिपन्नस्य दण्डो भवति शाश्वतः॥ (महाभारत, शान्ति० ५७। ७)

उत्पथं प्रतिपन्नस्य दण्डो भवति शासनम्॥ (महाभारत, शान्ति० १४०। ४८)

उत्पथं प्रतिपन्नस्य कार्यं भवति शासनम्॥ (वाल्मीकि० अयोध्या० २१। १३)

उत्पथं प्रतिपन्नस्य मनुस्त्यागमथाब्रवीत्॥ (पद्मपुराण, स्वर्ग० ५३। २५)

उत्पथे वर्तमानस्य परित्यागो विधीयते॥ (स्कन्दपुराण, नागर० २७८। ८८)

उत्पथप्रतिपन्नस्य मनुस्त्यागं समब्रवीत्॥ (कूर्मपुराण, उत्तर० १४। २४)

कल्याणसे परहेज है!

*** *** ***

श्रोता—'**वासुदेवः सर्वम्**' की भावना होनेके बाद चोर, डाकू, गाय, कुत्ते, शेर आदिसे व्यवहार कैसे करें?

स्वामीजी—व्यवहार तो यथायोग्य करो, पर भीतरसे भावमें फर्क नहीं पड़े। जैसे, नाटकमें खेल तो स्वाँगके अनुसार करते हैं, पर भावमें प्रेम रहता है। भीष्म पितामहका श्रीकृष्णके प्रति भाव तो भगवान्‌का था, पर युद्धके समय उन्होंने श्रीकृष्णको बाण मारकर घायल कर दिया!

*** *** ***

श्रोता—संसार नाशवान् है—यह हम समझते हैं, फिर भी हमारा मोह नहीं छूट रहा है!

स्वामीजी—नाशवान् समझा नहीं है, सुना है। मरनेपर आदमीको घरपर रखते हो क्या? क्यों नहीं रखते? आदमी तो वही है, जो पहले था! इसलिये नहीं रखते कि वह मुर्दा हो गया। एक दिन यह सब मुर्दा हो जायगा! आप बताओ कि कौन मुर्दा नहीं होगा? एक दिन छोड़ना तो पड़ेगा ही। मुर्दा होनेपर छोड़ोगे तो मुर्दा होनेसे पहले ही छोड़ दो।

साधु विचारकर भली समझिया दिवी जगत को पूठ।
पीछे देखी बिगड़ती तो पहलेहि बैठा रूठ॥

जो पहले ही समझ लेता है, वह बुद्धिमान होता है, और जो पीछे समझता है, वह महान् मूर्ख होता है। संसारमें एक सेवाके सिवाय और कोई सम्बन्ध मत रखो।

*** *** ***

श्रोता—कभी भगवान्‌के लिये व्याकुलता पैदा होती है और कभी चुप-साधन करता हूँ, दोनोंमें दुविधा रहती है कि कौन-सा ठीक है?

स्वामीजी—जिसमें भगवान्‌के प्रति आकर्षण, प्रेम पैदा हो, वह साधन तेज है। जिस साधनसे भगवान्‌में प्रेम हो, वह साधन एक नम्बरका है। वही साधन करो।

श्रोता—रामायणमें आया है—'*उमा राम सुभाउ जेहिं जाना। ताहि भजनु तजि भाव न आना॥*' (मानस, सुन्दर० ३४। २), वह भगवान्‌का स्वभाव क्या है?

स्वामीजी—परम दयालु स्वभाव! कोई आदमी हमारे अवगुण देख लेता है तो हमारे प्रति उसका भाव वैसा नहीं रहता; परन्तु भगवान् सब तरहके अवगुण देखते, जानते हैं, उनसे कोई बात छिपी नहीं है, फिर भी उनके भावमें फर्क नहीं पड़ता। वे आँख मीच लेते हैं!

रहति न प्रभु चित चूक किए की। करत सुरति सय बार हिए की॥

(मानस, बाल० २९। ३)

'प्रभुके चित्तमें अपने भक्तोंकी की हुई भूल-चूक तो याद नहीं रहती, पर उनके हृदयकी अच्छाईको वे सौ बार याद करते हैं!'

उमा राम सम हित जग माहीं। गुरु पितु मातु बंधु प्रभु नाहीं॥

(मानस, किष्किन्धा० १२। १)

'हे पार्वती! जगत्‌में रामजीके समान हित करनेवाला गुरु, पिता, माता, बन्धु और स्वामी कोई नहीं है।'

*** *** ***

श्रोता—जीव भगवान्‌का अंश है। भगवान् तो ज्ञानस्वरूप हैं, फिर जीवमें अज्ञान कैसे आ गया?

स्वामीजी—जीवने भोगोंको और पदार्थोंको स्वीकार कर लिया, इसलिये अपना स्वरूप भूल गया। इसलिये भोगोंको और पदार्थोंका त्याग कर दो। त्यागका अर्थ है—मनसे त्याग। गृहस्थाश्रममें रहते हुए भी मनमें भोगों और पदार्थोंका राग न हो।

जबतक रुपये अच्छे लगेंगे, तबतक भगवान् अच्छे नहीं लगेंगे, और भगवान् अच्छे लगेंगे तो रुपये अच्छे नहीं लगेंगे। भीतरसे केवल भगवान् ही प्यारे लगें। केवल भगवान् ही चिन्मय हैं। भगवान्‌के सिवाय सब जड़ है। वे भगवान् हमारे हैं—यह स्वीकार कर लो तो सब काम ठीक हो जायगा!

मनको चाहे भोगोंमें लगा लो, चाहे भगवान्‌में लगा लो।

कबीर मनुआँ एक है, भावे जिधर लगाय।
भावे हरि की भगति करे, भावे विषय कमाय॥

भोगोंमें मन लगेगा तो भगवान्‌में नहीं लगेगा। भगवान्‌में मन लग जायगा तो फिर भोगोंमें स्वतः-स्वाभाविक नहीं लगेगा। भोगोंमें महत्त्वबुद्धि, ग्राह्यबुद्धि नहीं रहेगी, एकदम पक्की बात है! भगवान्‌में मन लग गया तो लग ही गया, फिर संसारमें नहीं लगेगा। संसारकी सेवा करो, पर मन भगवान्‌में लगाओ। संसारमें कमलके पत्तेकी तरह निर्लिप्त रहो।

भोग और रुपयोंमें महत्त्वबुद्धि होगी तो भगवान् प्यारे नहीं लगेंगे। भगवान् प्यारे लगेंगे तो भोग और रुपयोंमें तुच्छबुद्धि हो जायगी। भोगोंमें लगे हुए मनुष्य मानो मैलेमें भरे हुए हैं! जैसे सूअरको मैला प्यारा लगता है, ऐसे ही उनको मैला अच्छा लगता है। भगवान् प्यारे लगेंगे तो मैला अच्छा नहीं लगेगा। भगवान् पवित्रोंमें पवित्र हैं—‘**पवित्राणां पवित्रम्**’ (विष्णुसहस्रनाम १०)। इसलिये भगवान् प्यारे लगेंगे तो आप महान् पवित्र हो जायँगे! आपकी दृष्टि, आपका हृदय सब पवित्र हो जायँगे। भोगोंसे मन हटाकर आप भगवान्‌में लग जाओ तो निहाल हो जाओगे!

एक बात और है, आप भगवान्‌को चाहोगे तो भगवान् भी आपको चाहेंगे, आपसे प्रेम करेंगे, पर रुपयोंको चाहोगे तो रुपये आपको नहीं चाहेंगे, भले ही आप रुपयोंके लिये रोओ! आप भगवान्‌में लग जाओ तो रुपये अपने-आप आयेंगे।

*** *** ***

श्रोता—ऐसा कोई उपाय बतायें कि थोड़ेमें भगवान् मिल जायँ!

स्वामीजी—जो थोड़ेमें भगवान्‌को चाहता है, उसको बहुतमें भी भगवान् नहीं मिलेंगे! परन्तु जो बहुत करना चाहता है, उसको थोड़ेमें भगवान् मिल जायँगे। आपने भगवत्प्राप्तिको बच्चोंका तमाशा, खेल समझ रखा है! थोड़ेमें भगवान्‌को पाकर फिर क्या करोगे? बोलो! इससे बढ़कर और क्या है, जिसको करोगे, बोलो! इसके सिवाय और क्या करोगे? किसमें समय लगाओगे? इसका उत्तर दो। क्या रुपया कमाओगे? भोग भोगोगे? **पूरा जन्म लगाकर भी भगवान् मिल जायँ तो बहुत सस्ता है!** कई जन्म बीत गये, पर भगवत्प्राप्ति नहीं हुई! अगर भगवत्प्राप्तिमें एक जन्म और लगा दें तो क्या हर्ज है? कौन-से घाटेकी बात है!

थोड़ेमें ही भगवान्‌की प्राप्ति क्यों, आपको दूसरे जो काम बढ़िया दीखें, वे करो और भगवान्‌को छुट्टी दे दो! भगवान्‌की जरूरत नहीं है! आपकी नीयत अच्छी नहीं है! नीयत खोटी है! यह भगवान्‌को प्राप्त करनेकी नीयत नहीं है। भगवान्‌को रद्दी चीज समझ रखा है! जैसे छोटा चार-पाँच सालका बच्चा

कहे कि मैं ब्याह करूँगा! उसको पता ही नहीं कि ब्याह क्या होता है! अगर भगवान्‌को प्राप्त करनेमें एक जन्म भी लग जाय तो बहुत सस्ता है! सत्संग करनेवालेके द्वारा ऐसा प्रश्न करना बड़े भारी आश्चर्यकी बात है!

जो भगवान्‌को सस्ता चाहता है, उसको भगवान् बहुत महँगे मिलेंगे और जो महँगे-से-महँगा चाहता है, उसको बहुत सस्ते मिलेंगे—ये दोनों बातें याद रखो। मेरी हाथ जोड़कर प्रार्थना है कि आप उद्देश्य बना लो कि हम मर भले ही जायँ, पर भगवान्‌को प्राप्त करना है। इसमें अपना पूरा जीवन लगा दो। जैसे मैं यहाँ बैठा हूँ, ऐसे आप भी बैठ जाओ, है हिम्मत आपकी! आपके काम ज्यादा हैं तो मेरे भी काम हैं! मैं निकम्मा नहीं हूँ! मेरेको लोग जितना चाहते हैं, आपके कुटुम्बके लोग आपको इतना नहीं चाहते। ऐसा निश्चय कर लो कि भगवत्प्राप्तिके लिये चाहे कितनी कठिनता भोगनी पड़े, हम भोगेंगे।

इहासने शुष्यतु मे शरीरं त्वगस्थिमांसं प्रलयं च यातु।
अप्राप्य बोधं बहुकल्पदुर्लभं नैवासनात्कायमिदं चलिष्यति॥

‘भले ही इस आसनपर मेरा शरीर सूख जाय, चमड़ी, मांस और हड्डियाँतक नष्ट हो जायँ; किन्तु बहुकल्पदुर्लभ बोध प्राप्त किये बिना इस आसनसे यह शरीर हिलेगा नहीं।’

आप सब जगह भगवान्‌को देखना शुरू कर दो। जो कुछ भी देखो, ये भगवान् हैं। इस बातको आप धारण कर लो। बहुत लाभ होगा! ***‘बन गये आप अकेले सब कुछ, नाम धरा संसार’***—इस बातको हरदम याद रखो।

*** *** ***

श्रोता—संसारको नाशवान् देखें या भगवत्स्वरूप देखें?

स्वामीजी—दोनों बातें हैं। अगर संसारमें आकर्षण होता है, संसार अच्छा लगता है, रुपये-पैसे मान-बड़ाई आदि अच्छे लगते हैं तो इसको नाशवान् देखो। **अगर संसार मीठा लगता है तो यह महान् भयंकर राक्षस है!** संसारका अच्छा लगना आपका अहित करनेवाला, नुकसान करनेवाला है!

श्रोता—हम सेवा करते हैं तो स्वार्थभाव बना रहता है! यह स्वार्थभाव कैसे छूटे?

स्वामीजी—सेवामें स्वार्थभाव नहीं होता। **अगर सेवाभाव होगा तो स्वार्थभाव नहीं होगा, और स्वार्थभाव होगा तो सेवाभाव नहीं होगा।** दोनोंमें एक बात होगी। सेवाभाव होगा तो स्वार्थका त्याग होगा। स्वार्थी आदमी सेवा नहीं कर सकता। सेवाभाव होनेपर स्वार्थभाव टिकता ही नहीं। दोनोंका आपसमें विरोध है।

*** *** ***

श्रोता—आपने कहा था कि भगवान्‌की शरणागतिमें ‘करने’ का अभिमान बाधा देनेवाला है, तो यह करनेका अभिमान कैसे मिटे?

स्वामीजी—भगवान्‌को ‘हे नाथ! हे नाथ!’ पुकारो, मिट जायगा। ‘हे नाथ! बचाओ, हे नाथ! बचाओ’ पुकारो, भगवान् बचायेंगे।

श्रोता—घरमें किसी प्राणीका देहान्त हो जाय तो उसके लिये भागवतका मूल पाठ स्वयं करें या किसी ब्राह्मणसे करवायें?

स्वामीजी—दोनों बातें हैं। घरमें करनेकी योग्यता हो तो घरमें करो, नहीं तो ब्राह्मणसे कराओ।

श्रोता—जब यहाँ कीर्तन होता है, तब कई बार चन्दन और केशरकी सुगन्ध आती है, जबकि हम कपड़ोंमें सुगन्ध नहीं लगाते और न पासमें किसीने लगाया होता है! ऐसा क्यों होता है?

स्वामीजी—भगवान्‌की कृपा है! भगवान् दर्शन दे सकते हैं। जब भगवान् आते हैं, तब सुगन्ध आती है।

श्रोता—अपने घरमें स्वर्गीय माता-पिता आदिका चित्र रखना चाहिये या नहीं रखना चाहिये?

स्वामीजी—रखना चाहिये। अपने माता-पिताका, पतिका चित्र रखना चाहिये।

श्रोता—माताओं-बहनोंको रुद्राक्षकी माला पहननी चाहिये कि नहीं?

स्वामीजी—नहीं। जप भी तुलसीकी मालासे करना चाहिये।

***   ***   ***

श्रोता—भजनके द्वारा हमारा प्रारब्ध बदल सकता है क्या?

स्वामीजी—बदल सकता है, पर प्रारब्धको क्यों बदलें? भोगकर निकाल देना बढ़िया है। भजन करके प्रारब्ध बदलना निरर्थक परिश्रम है! सार्थक है भगवान्‌में प्रेम होना। भजन भगवान्‌के प्रेमके लिये करना चाहिये, प्रारब्ध बदलनेसे क्या फायदा?

श्रोता—सन्त-महापुरुषोंसे ज्यादा-से-ज्यादा लाभ कैसे प्राप्त करें?

स्वामीजी—महात्मा जैसा है, वैसा आप बन जाओ। राजा दूसरेको राजा नहीं बनाता, धनी दूसरेको धनी नहीं बनाता, उल्टे धनी बननेमें बाधा देता है। संसारमें एक महात्मा ही है, जो दूसरेको भी महात्मा बनाना चाहता है। ऐसा दूसरा कोई है ही नहीं! सब दूसरेको अपने अधीन बनाना चाहते हैं। अपनी चीज बताना नहीं चाहते। परन्तु महात्मा अपनी चीज खुली (खुले आम) बताते हैं! उनको डर नहीं है कि ये मेरी चीज ले लेंगे।

गूढ़उ तत्त्व न साधु दुरावहिं। आरत अधिकारी जहँ पावहिं॥

(मानस, बाल० ११०। १)

'सन्तलोग जहाँ आर्त अधिकारी पाते हैं, वहाँ गूढ़ तत्त्व भी उससे नहीं छिपाते।'

इसलिये महात्मा बनना, तत्त्वज्ञ बनना, जीवन्मुक्त बनना सबसे सुगम है। इसमें मात्र प्राणी स्वतन्त्र हैं। कारण कि परमात्माके सिवाय कोई चीज अपनी नहीं है। उनपर मात्र प्राणीका अधिकार है।

अगर आपके मनमें महात्मा बननेकी आती है तो सीधी बात है—(अहंता-ममताका) त्याग करो। अन्तमें सबका त्याग करना ही पड़ेगा। त्याग भी उसी वस्तुका करना है, जो निरन्तर आपका त्याग कर रही है। उसका त्याग करनेसे आप तत्त्वज्ञ, जीवन्मुक्त हो जायँगे।

संसारमें आपकी चीज क्या है? बताओ। एक कौड़ी भी आपकी नहीं है! जो आपकी चीज नहीं है, उसको अपनी मत मानो, पूरी बात इतनी ही है! आपका धन आपका नहीं है, आपका कुटुम्ब आपका नहीं है, आपका घर आपका नहीं है, आपकी जमीन-जायदाद आपकी नहीं है, आपने अपनी मान रखी है। ये सब छूटेंगे.....सब छूटेंगे.....सब छूटेंगे! इनपर मनसे कब्जा छोड़ दो, परमात्माकी प्राप्ति हो जायगी! इसमें किंचिन्मात्र भी सन्देह नहीं है। आप इनको नहीं छोड़ो तो भी ये छूटेंगे ही! जिनको आप रख सकते नहीं, जो छूटेंगे ही, उनको मनसे अभी छोड़ दो तो अभी परमात्माकी प्राप्ति हो जायगी! बाधा आपने ही लगायी है। मेरा कुछ नहीं है और मेरेको कुछ नहीं चाहिये—ये दो बातें मान लो तो निहाल हो जाओगे!

*** *** ***

श्रोता—भगवान्‌के मुख अथवा चरणोंका ध्यान करें या पूरे विग्रहका ध्यान करें?

स्वामीजी—केवल इतना ध्यान करो कि 'भगवान् हैं'। वे कैसे हैं, कहाँ हैं, क्या करते हैं—यह पंचायती मत करो। वे 'हैं'—इसमें सन्देह नहीं है। वे ही हैं, दूसरा कोई है ही नहीं। यह ध्यान बहुत सुगम और श्रेष्ठ है। वे हैं और हमारे हैं।

वास्तवमें भगवान् सबको प्राप्त हैं। संसारको आपने माना है। आप इतनी बात मान लो कि सब भगवान् ही हैं। सात्त्विक, राजस और तामस—सब रूपोंमें भगवान् हैं—'**ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये। मत्त एव.....**' (गीता ७। १२)। बढ़िया-से-बढ़िया भी भगवान् हैं और घटिया-से-घटिया भी भगवान् हैं। वे जैसे हैं, हमारे हैं। वे कैसे हैं—इसको भगवान् खुद भी नहीं जानते। पर वे हैं—इसमें कोई सन्देह नहीं।

भगवान् ज्ञानियोंके भी शिरोमणि हैं और अज्ञानियोंके भी शिरोमणि हैं! विद्वान् भी भगवान् हैं और मूर्ख भी भगवान् हैं! पवित्र भी भगवान् हैं और अपवित्र भी भगवान् हैं! भगवान् सदा ही मुक्त हैं। आप भी सभी मुक्त हो। बन्धनका वहम है।

*** *** ***

श्रोता—जनेऊ लिये बिना गायत्री मन्त्रका उच्चारण कर सकते हैं क्या?

स्वामीजी—नहीं, बिल्कुल नहीं।

श्रोता—जिनको जनेऊ लेनेका अधिकार नहीं है, वे यदि जनेऊ लेते हैं तो उनको पाप लगेगा?

स्वामीजी—उनको पाप लगेगा, डबल लगेगा! कारण कि वे शास्त्रसे विरुद्ध अनधिकार चेष्टा करते हैं। वे जनेऊ केवल अभिमानके लिये लेते हैं। जिनका अधिकार है, वे जनेऊ नहीं लेते तो पाप लगेगा और जिनका अधिकार नहीं है, वे जनेऊ लेते हैं तो पाप लगेगा। वे दोनों ही पापी हैं, इसमें सन्देह नहीं है। यह कलियुगकी लीला है! नरकोंमें जानेका सीधा रास्ता अपनाया है!

श्रोता—जिनको जनेऊका अधिकार नहीं है, वे माताएँ-बहनें गायत्री-मन्त्रका जप कर सकती हैं क्या?

स्वामीजी—बिल्कुल नहीं.....बिल्कुल नहीं.....बिल्कुल नहीं! नयी आफत क्यों मोल लो!

श्रोता—अगर पतिने जनेऊ धारण किया हुआ है तो क्या पत्नीको उसका पुण्य मिलेगा?

स्वामीजी—पुण्य तो मिलेगा, पर जिसके मनमें तिरस्कार है, उसको पुण्य नहीं मिलता। जिसके मनमें आदर है, उसको मिलता है।

*** *** ***

श्रोता—आपने कहा कि भगवान्‌में आत्मीयता, प्रियता हो जाय—यह असली भजन है। परन्तु जो यह नामजप किया जाता है, यह क्या है?

स्वामीजी—भगवान्‌में प्रियता होनेके लिये ही नामजप किया जाता है। भगवान् मीठे लगने चाहिये। जैसे प्यास लगे तो जलका नाम नहीं लेते, भूख लगे तो अन्नका नाम नहीं लेते, पर उसमें मन लगता है, ऐसे ही भगवान्‌में मन लगे, भगवान् प्यारे लगें। **भगवान् प्यारे लगें—यही असली भजन है।**

श्रोता—भगवान् मीठे लगें तो फिर नाम लें चाहे मत लें—ऐसा तो नहीं है?

स्वामीजी—नाम लिये बिना आप रह सकोगे नहीं! हाथकी बात नहीं है! नाम अपने-आप आयेगा।

*** *** ***

एक अलौकिक शक्ति है, ताकत है। वह शक्ति सब जगह परिपूर्ण है। उस अलौकिक, विलक्षण शक्तिका नाम ही 'ईश्वर' है। उसीका अंश यह जीव है—***'ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी॥'***। जैसे परमात्मा अविनाशी, चेतन, अमल और सहज सुखराशि हैं, उनका अंश जीव भी वैसे-का-वैसा ही अविनाशी, चेतन, अमल और सहज सुखराशि है। उसमें कुछ भी फर्क नहीं पड़ा है। जो मैलापन आया है, वह भी अन्तःकरणमें आया है, अपनेमें नहीं है। अपनेमें कोई फर्क नहीं पड़ा है—**'शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते'** (गीता १३। ३१)। बड़े-से-बड़ा नीच कर्म करनेवालेके भी स्वरूपमें कुछ फर्क नहीं है। तात्पर्य है कि परमात्माके अंशमें कोई मैलापन आ गया हो, ऐसी बात नहीं है। वह वैसा-का-वैसा ही है। केवल अन्तःकरण परिवर्तित हुआ है और उसमें राग-द्वेष आ गया है। उसकी परवाह मत करो। वह अपने-आप छूट जायगा। कृपा करके यह स्वीकार कर लो कि अपने स्वरूपमें कुछ फर्क नहीं आया है। केवल वृत्तियोंमें फर्क पड़ा है। आपका स्वरूप वैसा-का-वैसा शुद्ध, निर्मल है। पाप और पुण्यरूपी क्रियाएँ आपतक पहुँचती ही नहीं। इसको केवल स्वीकार कर लो और निर्लिप्त होकर, स्वरूपमें स्थित होकर बिल्कुल शान्त, चुप हो जाओ। फिर सिद्धि स्वतः-स्वाभाविक है!

परमात्माकी प्राप्ति ऐसी नहीं है, जैसी लोगोंने समझ रखी है कि हम शुद्ध हो जायँगे, तब प्राप्ति होगी! आप स्वयं शुद्ध हैं, अशुद्धि है ही नहीं! आप स्वाभाविक निर्विकार हैं। निर्विकारता स्वाभाविक है, लानी नहीं है। आप सभी स्वाभाविक 'चेतन, अमल, सहज सुखराशि' हैं। स्वरूपतक अशुद्धि पहुँचती ही नहीं। मुक्ति स्वाभाविक है। आप 'चुप' हो जाओ तो शान्ति अपने-आप आ जायगी।

*** *** ***

श्रोता—उम्र ज्यादा हो गयी है और गुस्सा भी ज्यादा बढ़ रहा है! यह गुस्सा कैसे खत्म हो?

स्वामीजी—क्रोधका कारण है—कोई-न-कोई स्वार्थ होना। **'कामात्क्रोधोऽभिजायते'** (गीता २। ६२)—कामनासे क्रोध पैदा होता है। भीतरमें कुछ मानकी, बड़ाईकी, आदरकी, सत्कारकी इच्छा है। वह इच्छा मिटा दो तो क्रोध मिट जायगा।

कुछ-न-कुछ अपना मतलब है, तभी क्रोध आता है। भीतर चाहना रहती है कि हमारा मान हो, सत्कार हो, हमारा आदर हो, लोग समझें कि हम भी कोई हैं! इस अभिमानमें टक्कर लगती है तो क्रोध आता है। इसलिये मनमें कुछ भी कामना न रखें। सीधा-सरल स्वभाव हो तो क्रोध नहीं आता—

सरल सुभाव न मन कुटिलाई । जथा लाभ संतोष सदाई॥
मोर दास कहाइ नर आसा। करइ तौ कहहु कहा बिस्वासा॥
बहुत कहउँ का कथा बढ़ाई। एहि आचरन बस्य मैं भाई॥

(मानस, उत्तर० ४६। १-२)

'सरल स्वभाव हो, मनमें कुटिलता न हो और जो कुछ मिले, उसीमें सदा सन्तोष रखे। मेरा दास कहलाकर यदि कोई मनुष्योंकी आशा करता है तो तुम्हीं कहो, उसका क्या विश्वास है? बहुत बात बढ़ाकर क्या कहूँ, हे भाई! मैं तो इसी आचरणके वशमें हूँ।'

जो दोष नष्ट न हों, उनके नाशके लिये भगवान्‌को 'हे नाथ! हे नाथ!' पुकारो। सब चीजें भगवान्‌से मिलती हैं। काम-क्रोधादि सब दोष भगवान्‌की कृपासे मिटते हैं।

*** *** ***

श्रोता—मन भोगोंमें खिंचा चला जाता है, ऐसे समयमें क्या करना चाहिये?

स्वामीजी—आर्त होकर, दु:खी होकर, रोकर भगवान्‌को पुकारो 'हे नाथ! बचाओ! हे नाथ! बचाओ!' भगवान्‌की कृपासे बचाव होगा। भगवान्‌को पुकारना असली उपाय है।

एक ऐसी बात है, जो सबके काममें ली हुई है। सबके अनुभवकी बात है। बचपनमें किसी चीजकी जरूरत होती तो 'माँ-माँ' करके रो देते। फिर वह काम हो जाता! माँको भी सब काम छोड़कर आना पड़ता। बालक खुद तो कोई काम करता नहीं, पर माँको तो खोटी (निकम्मा) कर ही देता! वही एक उपाय आप काममें लाओ। भगवान् सबकी माँ है—'**त्वमेव माता च पिता त्वमेव**'। रोनेमें बड़ी शक्ति है—'**बालानां रोदनं बलम्**' (ब्रह्मवैवर्त० गणपति० ३५। ८९)। यह रामबाण उपाय है!

श्रोता—भगवान्‌का ध्यान करें तो मुखका करें अथवा चरणोंका करें या समग्ररूपका करें?

स्वामीजी—आपका मन जहाँ लगे, उसका ध्यान करो। जिनका दास्यभाव होता है, उनको स्वत:-स्वाभाविक चरणोंका ध्यान होता है। जहाँ माधुर्यभाव होता है, वहाँ स्वत:-स्वाभाविक मुखका ध्यान होता है। विभीषण रक्षा चाहता था, इसलिये उसका मन पहले स्वत: भगवान्‌की भुजाओंमें जाता है—'***भुज प्रलंब कंजारुन लोचन***' (मानस, सुन्दर० ४५। २)। जैसा भाव होता है, वैसा ध्यान होता है।

***   ***   ***

एक बात याद रखनेकी है कि परमात्मप्राप्तिके मार्गपर चलनेवाले जितने भी साधक होते हैं, वे सब निराकार होते हैं। शरीर साधक नहीं होता; क्योंकि शरीर तो मर जायगा और लोग उसको जला देंगे। अत: साधक साकार नहीं होता। चाहे भाई हो, चाहे बहन हो, सब साधक निराकार होते हैं। शरीरमें जो अभिमान रखता है, वह चेतन साधक है। जो जड़ संसारमें लगा हुआ है, वह 'संसारी' है, और जो जड़से विमुख होकर परमात्मामें लगा हुआ है, वह 'साधक' है।

साधक भावशरीर होता है। भगवान् मेरे हैं, मैं भगवान्‌का हूँ—यह भाव है। आप भावस्वरूप हैं। आप निराकार हैं, साकार नहीं हैं—यह याद रखो। ब्राह्मण साधक नहीं होता। क्षत्रिय साधक नहीं होता। वैश्य साधक नहीं होता। शूद्र साधक नहीं होता। ये ब्राह्मणादि सब वर्ण साकार शरीरको लेकर हैं। ऐसे ही ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी—ये भी शरीरको लेकर हैं। हम तो भगवान्‌के अंश हैं। भगवान्‌का अंश निराकार होता है। हम 'अविनाशी, चेतन, अमल, सहज सुखराशि' हैं। आप भीतरसे विचार कर लें कि मैं शरीर नहीं हूँ, मैं तो चिन्मय सत्तामात्र हूँ। जैसे आप रसोईघरमें जाकर भोजन करते हैं तो आप रसोईघर नहीं हो जाते, ऐसे ही आप स्त्री-पुरुषके शरीरमें आये हैं, स्वयं स्त्री-पुरुष नहीं हैं। जैसे आप रसोईघरसे अलग हैं, ऐसे ही आप शरीरसे अलग हैं।

स्वरूपकी दृष्टिसे आप अपनेको ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र न मानें, पर व्यवहारमें इनको जरूर मानें। व्यवहारमें मर्यादाके अनुसार चलना चाहिये—इसमें सन्देह नहीं है। परन्तु अपनेको साधक यह माने कि मैं सर्वत्र परिपूर्ण परमात्मसत्ताका अंश हूँ। मैं शरीर नहीं हूँ। एक सन्तके साथ ऐसी बात चली कि परमात्मा ब्राह्मणको मिलते हैं, तो वे बोले कि परमात्मा ब्राह्मण, क्षत्रिय आदिको नहीं मिलते। परमात्मा तो भक्तको मिलते हैं। भक्त न ब्राह्मण होता है, न क्षत्रिय होता है, न वैश्य होता है, न शूद्र होता है। ऐसे ही भक्त ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रमवाला भी नहीं होता। वर्ण और आश्रम तो समाजकी मर्यादा रखनेके लिये अत्यन्त आवश्यक हैं।

शरीर मिट जायगा, पर सत्ता नहीं मिटेगी। कई शरीर बदल जायँ तो भी सत्ता ज्यों-की-त्यों रहेगी। हमारा सम्बन्ध परमात्माके साथ है, शरीर-संसारके साथ नहीं है। शरीर तो पांचभौतिक है।

छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम सरीरा॥

(मानस, किष्किन्धा० ११। २)

'पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु—इन पाँच तत्त्वोंसे यह अत्यन्त अधम शरीर रचा गया है।'

साधकको सदा अपनेको निराकार मानना चाहिये, साकार नहीं मानना चाहिये। साकार शरीर है, मैं नहीं हूँ। जैसे पण्डालमें बैठकर आप पण्डाल नहीं हो गये, ऐसे ही शरीरमें बैठकर आप शरीर नहीं हो गये। चाहे भाई हो, चाहे बहन हो, साधकमात्र निराकार होता है। मैं भगवान्‌का हूँ, भगवान् मेरे हैं—यह मुख्य बात है। मैं भगवान्‌का हूँ तो मेरा सम्बन्ध भगवान्‌के साथ है, ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्रके साथ अथवा ब्रह्मचर्य-गृहस्थ-वानप्रस्थ-संन्यासके साथ नहीं है।

जात नहीं जगदीस के, जन के कैसे होय।
जात पाँत कुल कीच में, बंध मरो मत कोय॥

जो साधन करता है और किसी कारणवश योगभ्रष्ट होनेपर दूसरे जन्ममें पुनः साधनमें लगता है, वह स्वयं परमात्माका अंश है। वह साकार नहीं है, निराकार है। अगर आप निराकार नहीं होते तो फिर इस शरीरको छोड़कर दूसरे शरीरमें कैसे जाते? हम भगवान्‌के हैं। शरीर माँ-बापका है, इसलिये वर्ण-आश्रम शरीरको लेकर हैं, और वे अपनी जगह बड़े आवश्यक हैं। परन्तु भगवान्‌में हम स्वयं लगते हैं, शरीर नहीं।

जीव हरेक शरीरमें जाता है, चौरासी लाख योनियोंमें जाता है। अगर वह देवयोनिमें जायगा तो देवता थोड़े ही बन जायगा, और राक्षसयोनिमें जायगा तो राक्षस थोड़े ही बन जायगा, ऐसे ही मनुष्ययोनिमें आया है तो मनुष्य थोड़े ही बन गया! वह तो सदा भगवान्‌का चेतन, अविनाशी अंश ही रहेगा। स्वयं किसी भी योनिमें जाय, वह बदलता नहीं, वही रहता है।

भगति बीज पलटै नहीं, जो जुग जायँ अनंत।
ऊँच-नीच घर अवतरै, रहै संत-का-संत॥

इसलिये अपने ब्राह्मणपने आदिका अभिमान नहीं रखना चाहिये। अभिमान यह रखना चाहिये कि मैं भगवान्‌का हूँ और भगवान् मेरे हैं—

अस अभिमान जाइ जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे॥

(मानस, अरण्य० ११। ११)

*** *** ***

श्रोता—मन भोगोंमें जाता है तो हमने 'हे नाथ! हे नाथ!' बहुत पुकार लिया, लेकिन लाभ नहीं हुआ! अब और क्या उपाय करें?

स्वामीजी—नकली पुकार मत करो। हृदयसे रोकर असली भावसे पुकार करो। भगवान् नकली और असली पहचानते हैं। व्याकुलतापूर्वक प्रार्थना करनेसे काम बनता है। फिर भी आप पुकारते रहो तो नकलसे असल हो जायगा। पर इसमें देरी लगेगी। हम दूर करना चाहते हैं, पर दूर होता नहीं—इसका दुःख हो जाय तो काम हो जायगा। असली भाव हो तो उत्तर जरूर मिलेगा, और काम भी जरूर होगा, इसमें सन्देह नहीं है। **हृदयकी असली पुकार हो तो जो आप चाहते हो, वह काम स्वतः-स्वाभाविक हो जायगा!** जैसे, डाकू आकर हमें लूटने लगें और अपना वश नहीं चले तो उस समय जैसी पुकार होती है, वैसी पुकार होनी चाहिये।

मेरे मनमें तो ऐसी आती है कि केवल यही काम करना है, और कोई काम है ही नहीं! साथमें दूसरी बात नहीं चाहिये। दूसरी बात होती है तो असली प्रार्थना होती नहीं। दूसरी कोई बात मनमें न हो, तब असली प्रार्थना होती है। मेरे मनमें आयी कि हरेकको वैसी लगन क्यों नहीं लगती? असली पुकार क्यों नहीं निकलती? इसका कारण देखा कि वे एक परमात्मामें ही नहीं लगते। साथमें कुछ-न-कुछ और भी चाहते हैं। इसलिये कोई-सा भी काम नहीं बनता!

भगवान्‌के सिवाय किसी औरसे सम्बन्ध मत जोड़ो। औरसे सम्बन्ध जोड़ते हैं तो भगवान्‌का प्रेम मिलता नहीं। **दूसरेकी जरूरत तभीतक है, जबतक आप भगवान्‌में नहीं लगते। भगवान्‌में लगनेपर दूसरेकी जरूरत नहीं है।** दूसरेकी जरूरत भीतरसे उठा दो।

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

(गीता ८। १४)

‘हे पृथानन्दन! अनन्य चित्तवाला जो मनुष्य मेरा नित्य-निरन्तर स्मरण करता है, उस नित्य-निरन्तर मुझमें लगे हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ अर्थात् उसको सुलभतासे प्राप्त हो जाता हूँ।’

अन्य किसीमें चित्त न हो, अन्य कोई इष्ट न हो, अन्य कोई आधार न हो, अन्यमें प्रियता न हो, तब काम बनता है! अनन्यभाव जबतक नहीं होता, तबतक काम नहीं बनता।

एक भरोसो एक बल एक आस बिस्वास।
एक राम घन स्याम हित चातक तुलसीदास॥

(दोहावली २७७)

***　　***　　***

मोहसे सेवा नहीं होती। सेवा होती है तो मोह मिट जाता है। मैनावती माँने गोपीचन्दको साधु बना दिया तो यह गोपीचन्दकी सेवा हुई या गोपीचन्दमें मोह हुआ? अगर मोह होता तो वह साधु नहीं बनाती, प्रत्युत वहीं रहकर राज करनेको कहती। साधु बनानेकी ताकत मोहमें है ही नहीं! यह ताकत त्यागमें है। मोह होनेपर त्याग नहीं होता।

सेवा वही कर सकता है, जिसमें मोह नहीं है। निष्कामभाव हुए बिना सेवा नहीं होगी। कामना रहेगी तो मोह होगा। अतः कामना-रहित ही सेवा कर सकता है। सेवा करनी है, पर लेना कुछ नहीं है—ऐसा भाव होनेपर ही सेवा होगी। अगर कुछ भी लेनेकी इच्छा है तो वह मोह है, सेवा है ही नहीं।

माँ-बाप पालन करते हैं तो मोहसे करते हैं। लड़का मर जाय तो माँ रोती है। जो सेवा करता है, वह रोता नहीं। किसीने अन्नक्षेत्र खोला और उसमें भोजन करनेवाला कोई मर गया तो क्या वह रोयेगा? सेवा मोह छोड़नेसे ही होती है। निष्कामभावसे सेवा करनेसे मोह मिट जाता है। यह मोहको मिटानेका तरीका है।

***　　***　　***

एक बहुत ही बढ़िया बात है! साधक सांसारिक व्यर्थ चिन्तनसे घबरा जाता है। उससे व्यर्थ चिन्तन छूटता ही नहीं। इसका एक बढ़िया उपाय है कि आप इसको मिटानेकी चेष्टा मत करो, प्रत्युत शरीरसे अलग हो जाओ। व्यर्थ चिन्तन इस शरीरमें हो रहा है और कुत्तेके शरीरमें भी हो रहा है। जैसे कुत्तेके शरीरके साथ आपका सम्बन्ध नहीं है, ऐसे ही इस शरीरके साथ भी सम्बन्ध नहीं है। आप इससे

अलग हो जाओ। शरीर तो संसारमें है, हमें उससे क्या मतलब है? हम तो भगवान्‌में हैं; क्योंकि हम उनके ही अंश हैं। शरीर प्रकृतिका अंश है।

संकल्प-विकल्पको क्या मिटायें, उसके मूलको ही मिटा दें! चोरको न मारकर उसकी माँ (कारण)-को ही मार दें! शरीरसे अलग होकर भगवान्‌को अपना मान लो तो सब दोषोंकी जड़ ही कट जायगी! मैं भगवान्‌का हूँ, शरीर प्रकृतिका है। शरीर अपरा (जड़) प्रकृति है।

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥

(गीता ७। ४-५)

‘पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश (—ये पञ्चमहाभूत) और मन, बुद्धि तथा अहंकार—इस प्रकार यह आठ प्रकारके भेदोंवाली मेरी यह अपरा प्रकृति है; और हे महाबाहो! इस अपरा प्रकृतिसे भिन्न जीवरूप बनी हुई मेरी परा प्रकृतिको जान, जिसके द्वारा यह जगत् धारण किया जाता है।’

अहंकार अपरा प्रकृतिका है और हम भगवान्‌की परा प्रकृति हैं। इसलिये हमारा अहंकार है ही नहीं! हमारी बुद्धि है ही नहीं! हमारा मन है ही नहीं! हमारा आकाश है ही नहीं! हमारी वायु है ही नहीं! हमारा तेज है ही नहीं! हमारा जल है ही नहीं! हमारी पृथ्वी है ही नहीं! एकाग्रता और चंचलता दोनों ही अपनी नहीं हैं। हमारे केवल भगवान् हैं और हम केवल भगवान्‌के हैं। शरीरको संसारके अर्पण कर दो, अपनेको भगवान्‌के अर्पण कर दो। यह ऐसी बढ़िया बात है कि बहुत जल्दी कल्याण हो जाय, तत्त्वज्ञान हो जाय, जीवन्मुक्ति हो जाय!

भागवतमें प्रश्न आता है कि विषय तो मनमें बस गये और मन विषयोंमें बस गया, अब इनका त्याग कैसे करें? तो उत्तर दिया—‘**मद्रूप उभयं त्यजेत्**’ (श्रीमद्भा० ११। १३। २६) ‘दोनों (मन और विषयों)-को अपने वास्तविक स्वरूपसे अभिन्न मुझ परमात्मामें स्थित होकर त्याग दो’।

***　　　***　　　***

हमारे मनमें यह बात आयी है कि आपने चौरासी लाख देह धारण किये, पर किसी भी देहमें आप नहीं रहे तो फिर इस देहमें कैसे रहेंगे? इसलिये देह रहते हुए ही ‘मैं देहसे अलग हूँ’—यह अनुभव कर लो। जैसे पण्डालमें रहते हुए भी आप पण्डाल नहीं हैं, मकानमें रहते हुए भी आप मकान नहीं हैं, ऐसे ही देहमें रहते हुए भी आप देह नहीं हैं। इस बातको जाननेकी बड़ी आवश्यकता है। तीन बातें हैं—आप देह नहीं हो, देह आपका नहीं है और आपके लिये नहीं है। शरीरकी एकता संसारके साथ है। यह आपके काम नहीं आयेगा। देह मिला है केवल संसारकी सेवाके लिये, अपने सुखभोगके लिये बिल्कुल नहीं। शरीरसे भोग भोगोगे तो नरकोंमें जाओगे!

आप भगवान्‌के अंश हो। आपका सम्बन्ध भगवान्‌के साथ है। अतः भगवान्‌के सिवाय किसीके साथ भी सम्बन्ध मत जोड़ो। **किसीके साथ भी सम्बन्ध जोड़ना अनर्थका कारण है!** आजकल कई व्यक्ति केवल चेला बनानेके लिये ही साधु बनते हैं, व्याख्यान देते हैं! पहलेवाला सम्बन्ध तो टूटा ही नहीं, दूसरे सम्बन्ध बनाते हैं तो बड़ी दुर्दशा होगी!

श्रोता—वे कहते हैं कि हम तो लोक-कल्याणके लिये चेला बनाते हैं!

स्वामीजी—कल्याणकी भावना है तो बैठे-बैठे चिन्तन करो कि सबका कल्याण कैसे हो? चेला

बनानेसे कल्याण नहीं होगा। उल्टे बाधा लगेगी; उसमें ममता होगी कि मेरा चेला है। कल्याण कैसे होगा! मेरा चेला होनेसे कल्याण होगा क्या? ममता होनेसे हम भी फँसेंगे, वह भी फँसेगा! इसलिये किसीके साथ भी सम्बन्ध मत जोड़ो। माँ, बाप, भाई, स्त्री, पुत्र आदि जो पहलेके सम्बन्ध हैं, उनकी सेवा करो। माँ-बापके लिये आदर्श पुत्र बन जाओ। पत्नीके लिये आदर्श पति बन जाओ। ऐसा मानो कि पत्नीके लिये मैं हूँ, मेरे लिये पत्नी नहीं है। उन सबके साथ हमारा सम्बन्ध केवल सेवाके लिये है। उनसे कुछ लेना नहीं है। उनको अपना मत मानो, सेवा कर दो। पीहर और ससुराल—दोनोंकी सेवा कर दो। इस प्रकार कम-से-कम पुराने सम्बन्धको निभाओ, नया सम्बन्ध मत जोड़ो? **सन्त-महात्माओंसे भी उपदेश लो, पर उनसे सम्बन्ध मत जोड़ो।**

***　　　***　　　***

श्रोता—कोई आदमी देवता, पितर आदिको मानता है तो उसका काम तो बन जाता है, पर हम भगवान्‌को मानते हैं तो हमारा काम नहीं बनता है! इससे मनमें शंका उठती है कि क्या बात है कि भगवान्‌ने हमारा काम नहीं किया!

स्वामीजी—आपका काम नहीं बना तो भगवान्‌की बहुत बड़ी कृपा है! **अगर संसारकी इच्छा पूरी होती है तो समझो भाग्य फूट गया!** संसारकी इच्छा पूरी करते हुए तो युग बीत गये! इसलिये भगवान् जो करते हैं, ठीक करते हैं। संसारकी आशा पूरी नहीं होनी चाहिये। आशा करनी ही नहीं चाहिये—**'आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम्'** (श्रीमद्भा० ११। ८। ४४) 'आशा ही परम दुःख है और निराशा ही परम सुख है।' तुम्हारी आशा पूरी नहीं होती तो इसका अर्थ यह है कि संसारकी आशाका सर्वथा त्याग करो। भगवान् यह कह रहे हैं कि तुम आशा मत रखो; क्योंकि यह आपको संसारमें फँसानेवाली है। संसारकी आशा पूरी होनेसे नुकसान है, फायदा नहीं है। भगवान् वह करते हैं, जिससे आपका कल्याण हो। भगवान्‌की विशेष कृपा होती है, तब आशा पूरी नहीं होती! आशा पूरी होनेमें राजी होना पतन है!

धन मिल जाय, मान मिल जाय, बड़ाई मिल जाय, नीरोगता मिल जाय—ऐसी आशा सन्त-महात्मा कभी करते ही नहीं। संसारकी आशाका त्याग करनेसे मनुष्य संसारसे ऊँचा उठ जाता है, और संसारकी आशा पूरी होनेसे संसारमें दब जाता है, उसका गुलाम हो जाता है। भगवान् आपको गुलाम नहीं देखना चाहते। आपके पास लाखों-करोड़ों-अरबों रुपये हो जायँ तो भी आपकी गुलामी नहीं मिटेगी। गुलामी तभी मिटेगी, जब संसारकी आशा नहीं रहेगी। इसलिये हृदयसे प्रार्थना करो कि हे नाथ! मेरी इच्छा पूरी मत करो! मैं फँस जाऊँगा!

मेरी चाही मत करो, मैं मूरख अग्यान।
तेरी चाही में प्रभो, है मेरा कल्यान॥

इसलिये इच्छा पूरी न होनेमें भगवान्‌की बड़ी कृपा है। अगर इच्छा करो तो भगवान्‌की करो। एक भगवान्‌के सिवाय दूसरी इच्छा हो ही नहीं। अन्यकी इच्छाका त्याग कर दो तो बहुत जल्दी भगवत्प्राप्ति हो जाय। अगर हम दूसरी इच्छा करेंगे तो उस जगह भगवान्‌की इच्छा छोड़नी पड़ेगी, यह कितना बड़ा नुकसान है! भरतजी भगवान्‌से वर माँगते हैं—

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन॥

(मानस, अयोध्या० २०४)

'मुझे न धनकी, न धर्मकी तथा न कामकी ही रुचि (इच्छा) है, और न मैं मोक्ष ही चाहता हूँ। मैं तो बस यही वरदान माँगता हूँ कि जन्म-जन्ममें मेरा श्रीरामजीके चरणोंमें प्रेम हो। इसके सिवाय और कुछ नहीं चाहता।'

***　　　***　　　***

श्रोता—'**वासुदेवः सर्वम्**' के सिद्धान्तके अनुसार प्रत्येक वस्तुको साक्षात् भगवान्‌का स्वरूप मानें या प्रत्येक वस्तुके अन्तर्गत भगवान्‌को व्याप्त मानें?

स्वामीजी—दोनों ही ठीक हैं। दोनोंका फल एक ही होगा। अगर आपकी वस्तु-बुद्धि न हटे तो उसके भीतर भगवान्‌को मानो। अगर वस्तु-बुद्धि हट जाय तो साक्षात् भगवान् मानो। अपरा प्रकृति भी भगवान्‌की ही है। वास्तवमें भगवान्‌के सिवाय दूसरी चीज है ही नहीं।

श्रोता—'**वासुदेवः सर्वम्**' की बात हमें अच्छी तरहसे जँचती है.....

स्वामीजी—बहुत बढ़िया बात है! आप भाग्यशाली हो!

श्रोता—परन्तु कभी-कभी राग-द्वेष हो जाता है!

स्वामीजी—यह कमी है, जो मिट जायगी। इस तरफ विचार मत करो। एक बात है, सब भाई-बहन ध्यान देकर सुनना। आप कमीकी तरफ ख्याल नहीं करना। भगवान्‌के चिन्तन-भजनका विभाग अलग है, कमी (दोषों)-का विभाग अलग है। कमीका विभाग ऊपर-ऊपर है, भगवान्‌का विभाग गहरा है। **भगवान्‌का सम्बन्ध गहरा है और काम, क्रोध आदि ऊपर-ऊपर चिपके हुए हैं। इनकी तरफ ध्यान मत दो। ध्यान भगवान्‌की तरफ दो। दोषोंकी उपेक्षा करो, उदासीन हो जाओ। इनकी चिन्ता मत करो। इनको महत्त्व मत दो। बहुत जल्दी काम हो जायगा!**

परमात्मा तो प्राप्त हैं, अप्राप्त आपने माना है। आप परमात्माको सर्वव्यापक मानते हो तो जहाँ आप हो, वहाँ परमात्मा हैं कि नहीं? अगर नहीं हैं तो सर्वव्यापक कैसे? अतः परमात्मा प्राप्त हैं और हमारे हैं। काम-क्रोधादि कितने ही जोरसे आयें, उनकी जड़ ही नहीं है—'**नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः**' (गीता २। १६)। उनमें जो सत्ता दीखती है, वह आपकी दी हुई है। मूलमें भगवान्‌की सत्ता है। भगवान्‌की सत्तासे आपकी सत्ता है, और आपने सत्ता दे दी काम-क्रोधादि दोषोंको! आप भगवान्‌के अंश हो, काम-क्रोधादिके अंश नहीं हो।

आप भगवान्‌के हो—यह बात याद रखो। इतना याद रखनेमात्रसे बड़ा बल मिलता है! माँकी गोदमें बैठा हुआ बच्चा राजाको भी धमका देता है! जबकि माँ सर्वसमर्थ नहीं है। परन्तु हमारी सदाकी माँ भगवान् सर्वसमर्थ हैं। उनके समान सर्वसमर्थ कोई है नहीं, कोई हुआ नहीं, कोई होगा नहीं, कोई हो सकता नहीं! इसलिये दोषोंसे डरो मत।

आप भगवान्‌के अंश हो—'***ईस्वर अंस जीव अबिनासी***'। आपके भीतर दोष नहीं हैं। इसलिये इनकी परवाह मत करो। इनकी तरफ मत देखो। इनकी चिन्ता मत करो। ये मिट जायँगे। आप इनको महत्त्व देते हो, इसीलिये ये चिपकते हैं। इनकी उपेक्षा करो, विरोध मत करो। विरोध करनेसे सम्बन्ध जुड़ता है। इनकी उपेक्षा, उदासीनता, बेपरवाह करो तो ये अपने-आप ही मिट जायँगे।

दोष असत् हैं, भगवान्‌का अंश सत् है। सत्‌का विभाग अलग है, असत्‌का विभाग अलग है। असत्‌का अभाव होता है, सत्‌का कभी अभाव नहीं होता। असत्‌की सत्ता नहीं है, पर आप सत्ता देते हो। आप सत्ता मत दो तो यह अपने-आप मिट जायगा। भगवान्‌का सम्बन्ध सदा रहेगा। **आप खुद कहते हो कि कभी-कभी दोष आ जाता है, पर भगवान्‌का अंश क्या कभी-कभी होता है?** जो कभी-

कभी आते हैं, वे हमारे साथ हैं ही नहीं। आप नित्य-निरन्तर भगवान्‌के अंश हो, सदा भगवान्‌के साथ हो। भगवान्‌से दूर कभी हो सकते ही नहीं।

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नम: ॥

परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजके प्रवचनोंका सार-संग्रह

✳ 'गीताप्रेस' से प्रकाशित ✳

१. ज्ञानके दीप जले—

प्रवचन २४.३.१९९३ से १०.४.१९९४ तक

२. सत्संगके फूल—

प्रवचन ११.४.१९९४ से ३०.४.१९९५ तक

३. सागरके मोती—

प्रवचन १.५.१९९५ से १९.३.१९९६ तक

✳ 'गीता-प्रकाशन' से प्रकाशित ✳

४. स्वातिकी बूँदें—

प्रवचन २०.३.१९९६ से ७.७.१९९८ तक

५. सीमाके भीतर असीम प्रकाश—

प्रवचन ८.७.१९९८ से २३.१२.१९९९ तक

६. बिन्दुमें सिन्धु—

प्रवचन ५.१.२००० से २७.५.२००० तक

७. नये रास्ते, नयी दिशाएँ—

प्रवचन २८.५.२००० से १२.९.२००० तक

८. अनन्तकी ओर—

प्रवचन १३.९.२००० से २१.४.२००१ तक

९. मैं नहीं, मेरा नहीं—

प्रवचन २२.४.२००१ से ७.८.२००१ तक

१०. बन गये आप अकेले सब कुछ—

प्रवचन ८.८.२००१ से १६.११.२००१ तक

११. ईस्वर अंस जीव अबिनासी—

प्रवचन १९.११.२००१ से लेकर ३०.६.२००२

===::0::===

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नम: ॥

परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजकी वाणीपर आधारित 'गीता प्रकाशन' का शीघ्र कल्याणकारी साहित्य

१. **संजीवनी-सुधा**—'गीता साधक-संजीवनी' पर आधारित शोधपूर्ण पुस्तक।
२. **सीमाके भीतर असीम प्रकाश**—मार्मिक प्रवचनोंका सार-संग्रह।
३. **बिन्दुमें सिन्धु**—मार्मिक प्रवचनोंका सार-संग्रह।
४. **नये रास्ते, नयी दिशाएँ**—मार्मिक प्रवचनोंका सार-संग्रह।
५. **अनन्तकी ओर**—मार्मिक प्रवचनोंका सार-संग्रह।
६. **स्वातिकी बूँदें**—मार्मिक प्रवचनोंका सार-संग्रह।
७. **मैं नहीं, मेरा नहीं**—मार्मिक प्रवचनोंका सार-संग्रह।
८. **बन गये आप अकेले सब कुछ**—मार्मिक प्रवचनोंका सार-संग्रह।
९. **ईस्वर अंस जीव अबिनासी**—मार्मिक प्रवचनोंका सार-संग्रह।
१०. **अनुभव-वाणी**—चुने हुए अनमोल वचन। अँग्रेजी-भाषान्तरसहित।
११. **सन्त-वाणी (प्रथम शतक)**—चुने हुए सौ अनमोल वचन।
१२. **सन्त-वाणी (द्वितीय शतक)**—चुने हुए सौ अनमोल वचन।
१३. **सहज गीता** (अँग्रेजीमें भी)—'साधक-संजीवनी' के अनुसार गीताका सरल हिन्दीमें भावार्थ।
१४. **हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं** (गुजराती व अँग्रेजीमें भी)—इस प्रार्थनाके रहस्य तथा महत्त्वका वर्णन।
१५. **कृपामयी भगवद्‌गीता** (गुजराती व अँग्रेजीमें भी)—गीताकी महिमा और उसकी विलक्षणताका वर्णन।
१६. **लक्ष्य अब दूर नहीं** (गुजरातीमें भी)—परमात्मप्राप्तिके विविध सुगम साधनोंका अनूठा संकलन।
१७. **सहज समाधि भली** (गुजरातीमें भी)—'चुप साधन' का विस्तृत विवेचन।
१८. **अपने प्रभुको पहचानें**—भगवान्‌के समग्ररूपका विस्तृत विवेचन।
१९. **एक सन्तकी अमूल्य शिक्षा** (क्या करें, क्या न करें)
२०. **विलक्षण सन्त, विलक्षण वाणी**—परमश्रद्धेय श्रीस्वामीजी महाराजकी वसीयत-सहित।
२१. **गोरक्षा—हमारा परम कर्तव्य**—गायकी महत्ता और आवश्यकता।
२२. **रहस्यमयी वार्ता**—हस्तलिखित डायरीसे। विविध विषयोंसे सम्बन्धित मार्मिक प्रश्नोत्तर।
२३. **मेरे नाथ! मेरे प्रभो!**—भगवान्‌से अपनापन-सम्बन्धी बातोंका अनूठा संकलन।
२४. **जीवन्मुक्तिके रहस्य**—हस्तलिखित डायरीसे। जीवन्मुक्तिके सहज उपाय।
२५. **यह कलियुग है!**—कलियुगसे बचावके लिये चेतावनी।
२६. **मानस-मुक्ता**—श्रीरामचरितमानसके सकाम अनुष्ठानोंसहित।
२७. **क्या करें, क्या न करें ?**—आचार-व्यवहार संबंधी शास्त्र-वचनोंका अनूठा संग्रह।
२८. **भवन-भास्कर** (परिशिष्ट-सहित)—वास्तुशास्त्रकी महत्त्वपूर्ण बातें।
२९. **सुखपूर्वक जीनेकी कला**—सर्वोपयोगी प्रश्नोत्तर।
३०. **क्या आप ईश्वरको मानते हैं ?**—साधकोंके लिये चेतावनी।
३१. **हनुमानचालीसा**—पानीसे कभी खराब न होनेवाले वाटरप्रूफ पेपरपर मुद्रित।
३२. **बोलनेवाली श्रीमद्भगवद्गीता** (अर्थसहित, अँग्रेजीमें भी)—इसे पढ़नेके साथ-साथ शुद्ध उच्चारणमें सुन भी सकते हैं।

गीता प्रकाशन, कार्यालय—माया बाजार, पश्चिम फाटक,
गोरखपुर—273001 (उ०प्र०)
फोन—09389593845; 07668312429
e-mail: radhagovind10@gmail.com **website: www.gitaprakashan.com**